अधिप्रमाणित प्रतिलिपि
AUTHENTICATED COPY
पी. शिव शंकर
केन्द्रीय विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री
Minister for Law Justice & Company Affairs

(81)

भारत का विधि आयोग

इक्यासवीं रिपोर्ट

हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1856

दिसम्बर, 1979.

मुद्रा

न्यायमूर्ति पी०जी० दीक्षित

अध्यक्ष
विधि आयोग
भारत सरकार
नई दिल्ली
तारीख, 20 दिसम्बर, 1979

प्रिय मंत्री जी,

मैं इसके साथ विधि आयोग की इक्यासवीं रिपोर्ट भेज रहा हूं जिसमें हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856 को निरस्त करने की सिफारिश की गई है ।

2- 1856 के अधिनियम की विषय-वस्तु लगभग एक सौ वर्ष पश्चात् अधिनियमित चार अधिनियमों के अन्तर्गत पूर्णत: आ जाती है । ये हैं : (1) हिन्दू विवाह अधिनियम 1955; (2) हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 ; (3) हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम 1956 ; और (4) हिन्दू दत्तक और भरण-पोषण अधिनियम 1956 । ये अधिनियम हिन्दू विधि के सब नियमों, रूढ़ि और प्रथा पर, जिनका इन अधिनियमों से सम्बन्धित बातों के बारे में विधि का बल हो, अभिभावी होते हैं । ये किसी केन्द्रीय या राज्य विधान में अन्तर्विष्ट किसी ऐसी अन्य विधि को भी अतिष्ठित करते हैं जो इन अधिनियमों के उपबन्धों से असंगत हो ।

3- 1856 के अधिनियम के उपबन्धों पर सावधानी से विचार करने के पश्चात् आयोग इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि जिन चार अधिनियमों का अभी अभी निर्देश किया गया है उनके अधिनियमन के पश्चात् हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856 पुराना पड़ गया है और अब उसकी व्यावहारिक उपयोगिता नहीं रही, इसलिए इसे निरस्त कर देना चाहिए । इस निष्कर्ष के

समर्थक कारण तथा 1856 के अधिनियम का ब्यौरेवार विश्लेषण भी रिपोर्ट में विस्तारपूर्वक दिया गया है ।

4- रिपोर्ट के परिशिष्ट "क" में वह एतिहासिक पृष्ठभूमि दी गई है जिसके संदर्भ में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम का 1856 में अधिनियमन किया गया था ।

5- रिपोर्ट की तैयारी में श्री पी० एम० बख्शी ने जो सहायता की आयोग उसकी बड़ी सराहना करता है और यह बात लेखबद्ध करना चाहता है । अपर सचिव श्री वी० वी० बजे के प्रति भी आयोग बहुत आभारी है जिन्होंने दिलचस्प और लाभदायक परिशिष्ट तैयार किया ।

सादर,

भवदीय

ह०

(पी०वी० दीक्षित)

श्री एस० एन० कक्कड़,
विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री,
नई दिल्ली ।

विषय सूची

अध्याय	विषय
1	प्रारम्भिक
2	पुनर्विवाह, भरण-पोषण और उत्तराधिकार ।
3	संरक्षकता ।
4	नि:संतान विधवा ।
5	दत्तक ग्रहण सहित अन्य अधिकार ।
6	विवाह-कर्म और संरक्षकता ।
7	निष्कर्ष ।

परिशिष्ट : हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856 की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ।

अध्याय 1

प्रारम्भिक

र्ट का प्रतिपाद्य ।

1·1 यह रिपोर्ट हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1856 [1] से सम्बन्धित है । विधि आयोग द्वारा इस अधिनियम पर विचार उसके लिए विचारार्थ विषयों के अनुसार किया गया जो और बातों के साथ-साथ आयोग को विधि की विषमताओं और संदिग्धताओं को दूर करने के लिए सशक्त करते हैं । 1856 का अधिनियम व्यापक महत्व और उपयोजन का केन्द्रीय अधिनियम है । उसके कई उपबन्धों से अनेक व्यक्तियों के मस्तिष्कों में विषमताएं और संदेह पैदा हो सकते हैं जैसा कि इस रिपोर्ट के आगे के पैराओं से स्पष्ट होगा । विधि के सरलीकरण[2] के हित में और असमानताओं को हटाने के[3] व्यापक दृष्टिकोण से भी अधिनियम का पुनर्विलोकन बहुत आवश्यक प्रतीत होता है ।

वादी विधान
ाव ।

1·2 ऊपर उल्लिखित[4] विधि के सरलीकरण के पहलू के बारे में यह ध्यान देने योग्य है कि हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम विधवाओं के पुनर्विवाह के प्रसंग में हिन्दू विधि की विभिन्न शाखाओं पर विचार ~~[illegible]~~ करता है जैसे

1· संक्षेप में "1856 का अधिनियम" ।

2· आगे पैरा 1·2 और 1·3 ।

3· आगे पैरा 1·4 ।

4· पीछे पैरा 1·1 ।

विवाह, भरणपोषण, उत्तराधिकार और संरक्षकता । इसका उद्देश्य सम्बन्धित विषय पर विधि को संहिताबद्ध करना है ।

…5 और 1956 के …धान से पैदा होने वाली …स्थिति ।

1.3 अधिनियम 1856 में अधिनियमित किया गया था । लगभग एक सौ वर्ष पश्चात् चार अधिनियम बनाए गए अर्थात्, हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956, हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 और हिन्दू दत्तक और भरण-पोषण अधिनियम, 1956 । इन अधिनियमों ने विवाह, उत्तराधिकार, संरक्षकता, दत्तक ग्रहण और भरण-पोषण से संबंधित हिन्दुओं की निजी विधि में मूल और तात्विक परिवर्तन किए । इन अधिनियमों के बनाए जाने पर भी हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम अब भी कानून संहिता में सम्मिलित है । ऊपर निर्दिष्ट चारों अधिनियम इनमें होने वाली बातों के बारे में हिन्दू विधि के सभी नियमों, विधि का बल रखने वाली रूढ़ि या प्रथा पर भी अभिभावी होते हैं । ये किसी केन्द्रीय या राज्य विधान में अन्तर्विष्ट किसी ऐसी अन्य विधि को भी अतिष्ठित करते हैं जो इन अधिनियमों के उपबन्धों से असंगत हो । इसलिए यह आवश्यक है कि 1856 के अधिनियम की प्रत्येक धारा की जांच की जाए जिससे यह अभिनिश्चित हो जाए कि अधिनियम के उपबन्ध कहां तक असंगत या निरर्थक हो गए हैं और इसलिए निरस्त किए जाने आवश्यक हैं ।

…न्याय ।

1.4 इस प्रकार के मात्र विधिक दृष्टिकोण के अलावा सामाजिक न्याय की व्यापक बात भी है जो यहां सुसंगत है । अधिनियम के उपबन्धों का तात्पर्य विधवाओं पर कुछ

निर्योग्यताएं (जैसे निस्संतान विधवा की विरासत के अधिकार के सम्बन्ध में) आरोपित करता है [1] जिन्हें हमारे समाज के वर्तमान ढांचे में जारी नहीं रहने दिया जा सकता । इसलिए यह अत्यावश्यक है कि अधिनियम का पुनर्विलोकन किया जाए और विधि को सामाजिक न्याय के अनुरूप और अनुकूल बनाया जाए ।

इस प्रकार वह व्यापक प्रश्न, जिस पर विचार करना है, यह है कि उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए क्या 1856 के अधिनियम को निरस्त कर दिया जाए या उसका किसी रूप में जारी रखना आवश्यक है ? हमारा विचार इस सम्बन्ध में स्थिति की, अधिनियम में वर्णित प्रत्येक विषय के निर्देश से, जांच करना है ।

मुख्य विषय । 1.5 अधिनियम में वर्णित मुख्य विषय निम्नलिखित हैं :-

धारा	विषय
1.	हिन्दू विधवाओं के विवाह का वैध किया जाना ।
2.	विधवा के पुनर्विवाह कर लेने पर मृत पति की सम्पत्ति में उसके अधिकारों का समाप्त हो जाना ।
3.	विधवा के पुनर्विवाह कर लेने पर उसके मृत पति की संतानों की संरक्षता ।

---

1. आगे अध्याय 4 ।

4.	इस अधिनियम की कोई भी बात किसी निस्संतान विधवा को विरासत के लिए सक्षम नहीं बनाएगी ।
5.	धारा 2 से 4 तक में यथा उपबन्धित के सिवाय विवाह करने वाली विधवा के अधिकारों की व्यावृत्ति ।
6.	विधिमान्य विवाह के लिए किए जाने वाले कर्मों का विधवा के विवाह पर भी वही प्रभाव होगा ।
7, पहला पैरा ।	अवयस्क विधवा के पुनर्विवाह के लिए सम्मति ।
7, दूसरा पैरा ।	इस धारा के प्रतिकूल किए गए विवाह का दुष्प्रेरण करने के लिए शास्ति ।
7, तीसरा पैरा (परन्तुक)	ऐसे विवाह का प्रभाव ।
7, चौथा पैरा ।	वयस्क विधवा के पुनर्विवाह के लिए सम्मति ।

अध्याय – 2

पुनर्विवाह, भरण-पोषण और उत्तराधिकार

56 का अधिनियम –
...ित्त ।

2.1 1856 का अधिनियम हिन्दू विधवाओं के विवाह से संबंधित सभी विधिक बाधाओं को दूर करने वाला अधिनियम है ।[1] यह इसलिए अधिनियमित किया गया था क्योंकि जैसा कि अधिनियम की उद्देशिका के प्रथम पैरा में 1856 में कहा गया है हिन्दू विधवाएं, कतिपय अपवादों को छोड़कर, एक बार विवाह हो जाने के कारण दूसरा विधिमान्य विवाह करने में असमर्थ हैं, और ऐसी विधवाओं की दूसरे विवाह से उत्पन्न संतान अवैध तथा विरासत में सम्पत्ति प्राप्त करने में असमर्थ मानी जाती हैं । जैसा कि अधिनियम की उद्देशिका के तीसरे पैरा में वर्णित किया गया है अधिनियम का उद्देश्य "ऐसे सभी हिन्दुओं को उस विधिक असमर्थता से जिसके बारे में वे शिकायत[2] करते हैं मुक्त करना और हिन्दू विधवाओं के विवाह से सम्बन्धित सभी विधिक बाधाओं को दूर करना" है ।

...ा 1 –
...ओं के पुनर्विवाह
...धिमान्यता ।

2.2 इसलिए अधिनियम ने पहले उस निर्योग्यता को हटाया जिससे हिन्दू विधवाएं ग्रस्त थीं और धारा 1 में निम्नलिखित उपबन्ध करके उन्हें पुनः विवाह करने के लिए अनुज्ञात किया :

1. "किसी रूढ़ि और हिन्दू विधि के निर्वचन में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, हिन्दुओं में किया गया कोई विवाह अविधिमान्य और ऐसे विवाह से उत्पन्न सन्तान अधर्मज, इस कारण नहीं होगी कि ऐसे विवाह से पूर्व उस स्त्री

---

1. उदाहरणार्थ, गोकुल कुम्हार, [illegible] बनाम [illegible] [1968] 2, ओ०एल०आर० 199, 205 ।
2. ऐतिहासिक भूमिका के लिए परिशिष्ट देखिए ।

का विवाह किसी ऐसे अन्य व्यक्ति के साथ हुआ था या उसकी सगाई किसी ऐसे अन्य व्यक्ति के साथ हो चुकी थी जो ऐसे विवाह के समय मर चुका था ।"

...विवाह ...नियम, धारा 5(i)

2.3 यह धारा विधवा के पुनर्विवाह को विधिमान्य बनाती है और सन्तान का धर्मजत्व सुनिश्चित करती है । किन्तु हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 की धारा 5(i)[1] को देखते हुए, जिसमें यह उपबंधित है कि दो हिन्दुओं के बीच विवाह अनुष्ठापित किया जा सकेगा यदि विवाह के समय दोनों पक्षकारों में से, न तो वर की कोई जीवित पत्नी हो और न वधू का कोई जीवित पति हो, 1856 के अधिनियम की धारा 1 में अन्तर्विष्ट विशेष उपबन्ध अब आवश्यक नहीं है । धारा 5 का खण्ड (i) विधवा को पुनर्विवाह करने की अनुज्ञा देता है क्योंकि विवाह के समय वधू का कोई जीवित पति नहीं है । इस खण्ड के अधीन केवल इतना ही आवश्यक है कि विवाह या पुनर्विवाह का करार करने वाली स्त्री का विवाह के समय कोई जीवित पति न हो ; इस बात से कोई भी अन्तर नहीं पड़ता कि विवाह के समय किसी अन्य व्यक्ति के साथ उसकी सगाई हो चुकी हो या न हो चुकी हो । इस प्रकार 1856 के अधिनियम की धारा 1 बेकार हो गई है और निरस्त कर दी जानी चाहिए ।

...दू विवाह अधिनियम ...धारा 4 का प्रभाव ।

2.4 वास्तव में तो हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 की धारा 4 ने विनिर्दिष्ट रूप से निरस्त कर दिया है जो धारा इस प्रकार है :-

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1. हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955, धारा 5(i)

"4. इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से अन्यथा उपबंधित के सिवाय,-

(क) हिन्दू विधि का कोई ऐसा शास्त्र वाक्य, नियम निर्वचन या उस विधि की भागरूप कोई भी रूढ़ि या प्रथा जो इस अधिनियम के प्रारम्भ के ठीक पूर्व प्रवृत्त रही हो ऐसे किसी भी विषय के बारे में, जिसके लिए इस अधिनियम में उपबन्ध किया गया है, प्रभावहीन हो जाएगी;

(ख) इस अधिनियम के प्रारम्भ के ठीक पूर्व प्रवृत्त कोई भी अन्य विधि हिन्दुओं के सम्बन्ध में वहां तक प्रभावहीन हो जाएगी जहां तक कि वह इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट उपबन्धों में से किसी से भी असंगत हो।"

यह धारा हिन्दू विवाह अधिनियम के उपबन्धों को अध्यारोही प्रभाव प्रदान करती है और उक्त अधिनियम में व्यवहृत विषयों में से किसी के सम्बन्ध में चाहे अधिनियम के रूप में या अन्यथा सभी वर्तमान विधियों को, जो अधिनियम से असंगत हो प्रभावहीन कर देती है । हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 4 की अनिवार्य विवक्षा यह है कि प्रभावी तौर पर 1856 के अधिनियम की धारा 1 निरस्त कर दी गई है किन्तु इस उपबन्ध को स्पष्ट रूप से निरस्त करना वांछनीय है ।

2- भरणपोषण, [...]ीयती उत्तराधिकार [...]सीयती उत्तरा[...]र ।

2·5 अब हम 1856 के अधिनियम की धारा 2 को [...] लेंगे जो इस प्रकार है :-

"2· ऐसे सब अधिकार तथा हित, जो किसी विधवा को उसके मृत पति की सम्पत्ति में भरण-पोषण के तौर पर या उसके पति की विरासत या उसके पारम्परिक उत्तराधिकारियों की विरासत के रूप में या किसी ऐसी विल या वसीयती व्ययन के आधार पर, जो उसे पुनर्विवाह की अभिव्यक्त अनुज्ञा तथा ऐसी सम्पत्ति में उसे अन्य संक्रामण की शक्ति दिए बिना सीमित हित प्रदान करता हो, उसके पुनर्विवाह पर इस प्रकार समाप्त और पर्यवसित हो जाएंगे मानो उसकी उस समय मृत्यु हो गई हो, और तब उसके मृत पति के निकटतम वारिस या उस विधवा की मृत्यु के पश्चात् सम्पत्ति के हकदार अन्य व्यक्ति उसके उत्तराधिकारी होंगे ।"

[...]षण के [...] स्थिति ।

2·6 यह धारा (क) भरण-पोषण, (ख) निर्वसीयती उत्तराधिकार, और (ग) वसीयती उत्तराधिकार के बारे में है ।

जहां तक भरण-पोषण का सम्बन्ध है पुनर्विवाह पर विधवा के वे सब अधिकार और हित समाप्त हो जाते हैं जो कि उसके अपने मृत पति की सम्पत्ति पर भरण-पोषण के तौर पर हों । अपने प्रथम पति की सम्पदा से भरण-पोषण के और विधवा के अधिकार का समपहरण हिन्दू दत्तक और भरण-पोषण अधिनियम, 1956 की धारा 19 ~~और 22 के अतिरिक्त~~

और 22 से भी होता है[1] । जिसके अध्याय 3 में हिन्दुओं को लागू भरण-पोषण की विधि अन्तर्विष्ट है । धारा 19 के अधीन विधवा अपने ससुर से भरण-पोषण के अधिकार का दावा कर सकती है किन्तु ससुर की यह बाध्यता उस दशा में समाप्त हो जाती है जब विधवा पुनर्विवाह कर लेती है । अधिनियम की धारा 21 के अन्तर्गत, "आश्रित" शब्द की परिभाषा में विधवा भी है जब तक कि वह पुनर्विवाह नहीं करती । उस अधिनियम की धारा 22 में मृत हिन्दू के वारिस और अन्यों के द्वारा, जिन्होंने ऐसे मृत व्यक्ति की सम्पदा विरासत में पाई हो, आश्रितों के भरण-पोषण के अधिकार से संबंधित नियम दिए गए हैं । उस अधिनियम में एक ऐसा उपबन्ध, अर्थात् धारा 4 भी है जो अधिनियम के उपबन्धों के लागू होने को अभिभावी बनाता है । धारा 4 का परिणाम यह है कि वह हिन्दू दत्तक और भरण-पोषण अधिनियम, 1956 में आए विषयों में से किसी के सम्बन्ध में सब वर्तमान विधियों को प्रभावहीन कर देती है। ऐसी परिस्थिति में 1856 के अधिनियम की धारा 2 का स्थान, जहाँ तक वह भरण-पोषण के तौर पर मृत पति की सम्पत्ति पर विधवा के अधिकारों और हितों के समपहरण क से संबंधित है, भरण-पोषण अधिनियम 1956 की धारा 19, 21 और 22 ने ले लेना चाहिए । उसका अब कोई लाभदायक प्रयोजन नहीं है ।

द्वारा विरासत से पाए ... पर धारा 2 का प्रभाव।

2.7 1856 के अधिनियम की धारा 2 में विधवा द्वारा पुनर्विवाह करने पर ऐसे सब अधिकारों और हितों के समपहरण की भी चर्चा है जो कि उसके अपने पति की सम्पत्ति

1. हिन्दू दत्तक और भरण-पोषण अधिनियम, 1956 की धारा 4, 19, 21 और 22 ।

में हों । हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की धारा 8 के अधीन अपने मृत पति की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी होने वाली विधवा उस अधिनियम की धारा 14 के अधीन उसकी पूर्ण स्वामी होगी । हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में यह अधिनियमित करने वाला कोई उपबन्ध नहीं है कि पुनर्विवाह पर विधवा अपने पति से वसीयत में प्राप्त सम्पत्ति से निर्निहित हो जाती है । इसलिए यदि 1856 के अधिनियम की धारा 2 को पूर्ण सम्पत्ति वाली विधवा पर लागू होने के रूप में पढ़ा जाए तो यह हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के विरुद्ध होगी ।[2]

सीमित सम्पत्ति तक ... करके धारा 2 का ... ।

2.8 अनेक न्यायालयों[3] ने यह मत प्रकट किया है कि 1856 के अधिनियम की धारा 2 पूर्ण सम्पत्ति पर लागू नहीं होती ।

---

1. (क) मुनियम्मल अम्माल बनाम रामलिंगम, ए०आई०आर० 1970 एस०सी० 1730 ।

   (ख) कस्तूरी देवी बनाम डिप्टी डायरेक्टर आफ कंसालिडेशन, ए०आई०आर० 1976, एस०सी० 2595 ।

2. पाडुरंग नारायण बनाम सिंधु, ए०आई०आर० 1971 [illegible] बम्बई, 413 (चन्द्रचूड़ और मार्लकर न्या०)

3. (क) रामप्यारी बनाम बोर्ड आफ रेवेन्यू, ए०आई०आर० 1972 इलाहाबाद 492 ।

   (ख) पांडुरंग नारायण बनाम सिंधु, ए०आई०आर० 1971 बम्बई 413, 415 पैरा 10 ।

   (ग) इशाक भौमिक बनाम अनीता (1973) 78सीडब्ल्यूएन० 1011, 1020 ।

   (घ) शंकरी बाला बनाम असित बरणी, ए०आई०आर० 1977, कलकत्ता 289, 292 ।

   (ङ) लक्ष्मी अम्माल बनाम धनाकल आसारी, ए०आई०आर० 195[illegible] मद्रास 534 ।

   (च) जगदीश महतो बनाम मुहम्मद इलाही, ए०आई०आर० 197[illegible] पटना 170 ।

   (छ) श्रीमती भूरी बाई बनाम श्रीमती चम्पी बाई, ए०आई०आर० 1968 राजस्थान 139

इसके अलावा यह अभिधारित[1] किया गया है कि जब कोई विधवा 1956 के अधिनियम के अधीन सम्पत्ति की उत्तराधिकारी हो जाती है और पूर्ण अधिकार अर्जित करती है तब उसे उसके पुनर्विवाह पर उस अधिकार से निर्निहित नहीं किया जा सकता ।

और मुल्ले के मत । 2.9 इस विषय पर लेखकों में कुछ मतभेद पैदा हो गए हैं । मायला मुल्ला ने[2] इस प्रकार कहा है -

" विधवा का पुनर्विवाह अब, अधिनियम के अधीन, उसके द्वारा अपने पति से विरासत में पाई सम्पत्ति से निर्निहित करने का आधार नहीं है । हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856 यद्यपि हिन्दू विधवा के पुनर्विवाह को वैध करता है किन्तु विधवा के रूप में उसे विरासत में मिली सम्पत्ति से उसे निर्निहित करता है । इसके विवाह से अपने पति की सम्पत्ति में हित समाप्त हो जाता है और वह उसके पति के अगले वारिसों को इस प्रकार चला जाता था मानो वह मर गई हो (उस अधिनियम की धारा 2) । उस अधिनियमिति में निर्धारित किया गया नियम वर्तमान अधिनियम के अधीन आने वाले मामले पर लागू नहीं हो सकता और विधवा अपने पति की सम्पत्ति में हित या **उस की पूरी स्वामी**[3] हो जाती है जो उसे वर्तमान धारा के अधीन उत्तराधिकार से न्यागत होता है । उसका पुनर्विवाह, जो निश्चय ही उसके

---

1. जगदीश डडडी बनाम मुहम्मद बलाही, ए०आई०आर० 1973, पटना 170 (डी०बी०) ।
2. मुल्ला, "हिन्दू ला" (चौदहवां संस्करण 1974), पृष्ठ 869 ।
3. बल दिया गया हमारी ओर से ।

पति की मृत्यु पर उसके हित या अंश के निहित होने के पश्चात् होगा, ऐसे प्रवर्तित नहीं होगा कि वह उसे ऐसे अंश या हित से निर्निहित करे । हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1856 निरस्त नहीं हुआ है किन्तु वर्तमान अधिनियम की धारा 4 का यह प्रभाव होता है कि वह ऐसी विधवा के मामले में जो वर्तमान धारा के अधीन अपने पति की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी होती है, उस अधिनियम के प्रवर्तन का निराकरण करती है और धारा 14 का यह प्रभाव हुआ है कि वह उसके पति की सम्पत्ति के उस हित या अंश को उसके पूर्ण स्वामी के रूप में निहित करती है ।"

किन्तु गुप्ते ने उपर्युक्त से भिन्न मत प्रकट किया है[1]। विद्वान् लेखक के मतानुसार हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856 की धारा 2 हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956की धारा 4 द्वारा निराकृत नहीं की गई है, कि "यद्यपि हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856 की धारा 2 ऐसे समय पर प्रारूपित की गई थी जब कि अपने पति या उसके पारम्परिक उत्तराधिकारी का उत्तराधिकार प्राप्त करने वाली विधवा केवल परिसीमित सम्पत्ति प्राप्त करती थी किन्तु उस धारा की भाषा पूर्ण सम्पत्ति वाली विधवा को लागू होने के योग्य है।" लेखक आगे कहते हैं,"किन्तु हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम की धारा 2 के अधिनियम के तौर पर यह अनुरोध करना अब भी संभव है कि उसकी सम्पदा, चाहे वह पूर्ण हो,समपहृत हो जाएगी

---

1. गुप्ते, हिन्दू ला आफ सक्सेशन (1972) पृष्ठ 457-458 ।

"विशेषकर इसलिए कि <u>वह अधिनियम निरस्त नहीं किया गया है।</u>[2] यदि कोई सम्पत्ति समपहृत की जा सकती है तो इससे कोई अन्तर नहीं पड़ना चाहिए कि वह सम्पत्ति धारा 14 द्वारा पूर्ण सम्पत्ति में संपरिवर्तित की जा सकती है या नहीं। कोई भी सम्पत्ति चाहे वह पूर्ण हो या परिसीमित कुछ परिस्थितियों या दशाओं में फिर भी हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम की, जो निरस्त नहीं किया गया है, धारा 2 के नियम जैसे किसी स्वतंत्र नियम द्वारा समपहृत की जा सकती है।"

...के अधिकारी में धारा 2को ...करने की आवश्य-

2.10 इस बाबत विवाद में पड़ने की आवश्यकता नहीं है कि क्या 1856 के अधिनियम की धारा 2 हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम[2] द्वारा निराकृत हुई या नहीं या क्या धारा 2 पूर्ण सम्पत्ति वाली विधवा पर लागू होती है या नहीं। यदि धारा 2 निराकृत नहीं की गई है और पूर्ण सम्पत्ति वाली विधवा पर लागू होती है या नहीं तो सुतराम उसे स्पष्ट रूप से निरस्त करना चाहिए।/ जिससे कालदोष से यह परिणाम हो कि हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के अधीन उत्तराधिकार द्वारा उसे न्यागत होने वाली सम्पत्ति विधवा के पुनर्विवाह पर निर्निहित हो जाए। धारा के निरस्त किए जाने वह सब मतभेद समाप्त[3]

ऐसे ही नहीं रहने चाहिए।

---

1. बल दिया गया हमारी ओर से।
2. पीछे पैरा 2.8 और <u>दुखली</u> बनाम <u>गुरुदर</u> भी देखिए ए०आई०आर० 1977 उड़ीसा 142।
3. पीछे पैरा 2.9 देखिए।

हो जाएगा जो धारा के अर्थान्वयन के बारे में और पूर्ण सम्पत्ति वाली विधवा पर उसके लागू होने के बारे में पैदा हुआ है ।

उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 24 पर प्रभाव ।

2.11. यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि ऊपर जैसी सिफारिश की गई है[1] उसके अनुसार धारा 2 को निरस्त करने से हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 24 के प्रवर्तन पर [2] किसी प्रकार प्रभाव नहीं पड़ेगा जो कि पूर्वमृत पुत्र की विधवा या पूर्वमृत पुत्र के पूर्वमृत पुत्र की विधवा या भाई की विधवा को निर्वसीयती सम्पत्ति की ऐसी विधवा के नाते उत्तराधिकारी होने से उस दशा में निरर्हित करती है जब कि उत्तराधिकार खुलने की तारीख को वह पुनर्विवाहित हो । यह उपबन्ध अपने अन्तर्गत आने वाले मामलों पर लागू होता रहेगा ।

वसीयती व्ययन पर धारा 2 का प्रभाव ।

2.12. वसीयती व्ययनों को धारा 2 के लागू होने के बारे में हमें यह ध्यान में रखना है कि हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 30 यह उपबन्ध करती है कि कोई हिन्दू विल द्वारा या अन्य वसीयती व्ययन द्वारा भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 या हिन्दुओं को लागू और किसी अन्य तत्समय प्रवृत्त विधि के उपबन्धों के अनुसार किसी सम्पत्ति को व्ययनित कर सकेगा । अतः ऐसे व्ययनों के बारे में निर्वचनाओं पर भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम[3] या जहाँ लागू हो वहाँ अन्य विधि लागू होगी और उस दशा

---

1. पीछे पैरा 2.10 ।
2. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 24 ।
3. भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 24 देखिए ।

के सिवाय जब कि कोई विल पुनर्विवाह पर वसीयत के समपहरण के लिए विनिर्दिष्टतया उपबंधित करता है वसीयत का कानूनी समपहरण नहीं होगा । अत: 1856 के अधिनियम की धारा 2 का यह भाग भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के अनुरूप नहीं है और इसलिए समाप्त कर दिया जाना चाहिए ।

2 को निरस्त
की सिफारिश ।

2.13. पूर्वगामी चर्चा से यह स्पष्ट है कि हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम की सम्पूर्ण धारा 2 को निरस्त कर देना चाहिए ।

अध्याय 3

संरक्षकता

3 -
की संरक्षकता ।

3.1. अब हम 1856 के अधिनियम की धारा 3 की चर्चा करेंगे, जो पुनर्विवाह कर लेने वाली हिन्दू विधवा के मृत पति की संतानों की संरक्षकता के बारे में है। धारा इस प्रकार है :-

" 3. विधवा के पुनर्विवाह करलेने पर उसके मृत पति की संतानों की संरक्षकता : हिन्दू विधवा के पुनर्विवाह करलेने पर यदि न तो विधवा को न किसी अन्य व्यक्ति को ही मृत पति को विल या वसीयती व्ययन द्वारा अभिव्यक्त रूप से उसकी सन्तानों का संरक्षक बनाया गया है, तो मृत पति का पिता या पितामह या माता या पितामही या मृत पति का कोई पुरुष नातेदार उक्त सन्तानों के संरक्षक के तौर पर किसी उचित व्यक्ति की नियुक्ति के लिए उस स्थान में, जहाँ मृत पति अपनी मृत्यु के समय अधिवसित था, सिविल मामलों में आरम्भिक अधिकारिता रखने वाले सर्वोच्च न्यायालय में अर्जी दे सकेगा और तब उक्त न्यायालय के लिए, यदि वह ठीक समझे तो, ऐसा संरक्षक नियुक्त करना विधिपूर्ण होगा जो नियुक्त किए जाने पर उक्त संतानों की या उनमें से किसी की अवयस्कता के दौरान उनकी माता के स्थान पर देख रेख और अभिरक्षा का हकदार हो ; :

"और ऐसी नियुक्ति करने में न्यायालय यथावश्यक ऐसी प्रवृत्त विधियों और नियमों को ध्यान में रखेगा जो ऐसी संतानों की संरक्षकता से संबंधित हैं जिनके पिता तथा माता न हों :

परन्तु यदि उक्त संतानों के पास, जब कि वे अवयस्क हों, अपने भरणपोषण तथा उचित शिक्षा के लिए अपनी पर्याप्त सम्पत्ति न हो तो ऐसी कोई भी नियुक्ति जब तक प्रस्तावित संरक्षक संतानों की उनकी अवयस्कता के दौरान उनके भरण-पोषण तथा उचित शिक्षा के लिए प्रतिभूति न दे दे, माता की सम्मति के बिना नहीं की जाएगी ।"

...3 और 1956 ...अधिनियम का ...।

3.2. वस्तुतः धारा 3 विनिर्दिष्ट न्यासदारों को इसके लिए सशक्त[1] करती है कि वे मृत पति के संतानों की -- जो अभिव्यक्ततः विवाह की सन्तान तक परिसीमित न हों-- संरक्षकता के लिए न्यायालय को आवेदन उस दशा के सिवाय कर सकें जब कि वसीयती संरक्षक नियुक्त किया गया हो । इस सम्बन्ध में यह जानना आवश्यक है कि यह मामला अब उचित रूप से पूर्णतः हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम के अन्तर्गत आता है[2] । महिला का पुनर्विवाह भी उस अधिनियम के अधीन संरक्षकता के लिए निरर्हता नहीं है ।

---

1. पीछे पैरा 3.1
2. इस सम्बन्ध में हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम 1956 की धारा 6(2) देखिए ।

...ता के अधिकार की ...प्ति नहीं होगी ।

3.3 न्यायिक विनिश्चयों के अनुसार, 1856 के अधिनियम की धारा 3 पुनर्विवाह करने वाली विधवा की संरक्षकता को अभिव्यक्त रूप से समाप्त नहीं करती ।[1] वह केवल उसके अधिमानी अधिकार को समाप्त करती है।[2] सन्तान के संरक्षक की नियुक्ति के सम्बन्ध में न्यायालय को स्वविवेक प्राप्त है हालांकि सामान्यतया न्यायालय विधवा से भिन्न व्यक्ति को नियुक्त कर सकेगा ।[3]

इस प्रसंग में धारा 3 अवयस्क के शरीर का न कि सम्पत्ति का संरक्षक नियुक्त करने के लिए उपबन्ध करती है।[4]

...3 द्वारा पैदा की ...समाप्ति और

3.4 इस बात को ध्यान में रखते हुए कि विधि को हिन्दु अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम 1956 की धारा 5(क) और 6 में संहिताबद्ध कर दिया गया है, 1856 के अधिनियम की धारा 3 का कानून संहिता में निरन्तर बना रहना भ्रम पैदा करता है जिसे इस धारा को निकाल कर समाप्त कर देना चाहिए।[5-6]

---

1. गंगा बनाम झालो, (1911) आई०एल०आर० 36 कलकत्ता 862
2. प्रेम कौर बनाम बनारसी सिंह, ए०आई०आर० 1939 लाहौर 125
3. गंगा बनाम झालो (1911) आई०एल०आर० 36 कलकत्ता, 862, 872, 873 (मुकर्जी न्या०)
4. रूप रौत बनाम वसुदेव रौत, ए०आई०आर० 1962 पटना 436, 438 पैरा 4 ।
5. अशीराम भगतराम बनाम शीला देवी, ए०आई०आर० 1960 पंजाब 304 (डी०के०महाजन न्या०)
6. कुना परीदा बनाम लेक्या, ए०आई०आर० 1966 उड़ीसा 60, 61 पैरा 5 (जी०के०मिश्र न्या०)

अध्याय 4

निःसंतान विधवा

धारा 4 – निःसंतान विधवा।

4. 1. धारा 4 में अधिनियम में एक ऐसा उपबन्ध है जो विरासत के अधिकार के बारे में निःसंतान विधवा की कल्पित निर्योग्यता को जारी रखना चाहती है। ऐसा उपबन्ध अब अतीत हो जाता है। धारा इस प्रकार है :

"4. इस अधिनियम की कोई भी बात किसी निःसंतान विधवा को विरासत के लिए हकदार नहीं बनाएगी – इस अधिनियम की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह किसी ऐसी विधवा को जो ऐसे व्यक्ति की मृत्यु के समय जिसकी कोई सम्पत्ति होती है, निःसंतान विधवा है, ऐसी सम्पत्ति को पूर्णतः या भागतः विरासत में पाने के लिए हकदार बनाती है, यदि वह इस अधिनियम के पारित होने से पूर्व, निःसंतान विधवा होने के कारण उसे विरासत में पाने के लिए हकदार न होती।"

उत्तराधिकार की ... भी भ्रम की ...ार।

4. 2. इस उपबन्ध से निःसंतान विधवा की विधिक स्थिति के बारे में भी भ्रान्ति पैदा हो सकती है। यदि किसी असंहिताबद्ध या असंशोधित हिन्दू विधि[1] की किसी शाखा के अधीन ऐसी कोई निर्योग्यता मौजूद थी भी तो अब हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 के अधीन स्थिति भिन्न है।

1- आगे पैरा 4.4 और 4.5

यह अधिनियम वसीयत के अधिकार के बारे में ऐसी किसी निर्योग्यता को स्वीकार नहीं करता । जहाँ यह किसी विधवा को ऐसा अधिकार प्रदान करता है वहाँ ऐसा अधिकार निःसंतान विधवाओं और अन्यों के बीच किसी विभेद के बिना प्रदान किया जाता है । यदि कोई विधवा उक्त अधिनियम के अधीन किसी व्यक्ति की - चाहे वह पुरुष हो या महिला - सम्पत्ति की उत्तराधिकारी होने की हकदार है और उस अधिनियम में विनिर्दिष्ट रूप से दी गई निर्योग्यता के कारण उससे वंचित नहीं है[1] तो इस अधिनियम के घोषित उद्देश्य को - अर्थात् विधि को "संशोधित और संहिताबद्ध" करने के उद्देश्य को - देखते हुए कोई अन्य निर्योग्यता अधिरोपित नहीं की जा सकती । अतः इसी आधार पर 1856 के अधिनियम की धारा 4 को, वर्तमान विधि से असंगत होने के कारण, निरस्त करना उचित है ।

उत्तराधिकार ...म के पूर्व स्थिति ।

4.3. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के पूर्व इस विषय पर की स्थिति भी उसकी संक्षिप्त रूप में यहाँ विवेचना लाभदायक रहेगी । हिन्दू विधि की मिताक्षरा शाखा के अनुसार सम्पत्ति अधिकार पर पुत्री के उत्तराधिकार के अधिकार का उसके द्वारा अपने पुत्र के माध्यम से [illegible] के लिए पाने पर आधारित होने के कारण ऐसी पुत्री को पुत्रहीन विधवा हो अपने पिता से विरासत पाने की हकदार नहीं थी ।[2] तदनुसार: 1856 के अधिनियम की धारा 4 के स्थान में वही निर्योग्यता थी ।

1- उदाहरणार्थ, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की धारा 25 ।

2- मायने, अध्याय 11, खण्ड 11, पद 3 और 15, हिन्दू लॉ एण्ड यूसेज (1923) पृष्ठ 314-318 ।

...दशा में स्थिति – ...उत्तराधिकार अधि- ...के पूर्व निर्णय विधि।

4.4. कलकत्ता के पहले के विनिश्चय हैं[1-2] जो बांझ पुत्रियों या पुत्रहीन विधवा पुत्रियों को अपने पिता का उत्तराधिकारी होने से निवर्जित करते हैं।[3] यह नियम इलाहाबाद के[4] एक मामले में भी (जिसे पटाकार दायभाग से सम्बन्धित बताते हैं) माना गया प्रतीत होता है जिसमें निःसंतान विधवा पुत्री के मुकाबले में मृत पुत्री के पुत्रों को अधिमान दिया गया।

...द्वारा अनुमत ...किया।

4.5. ऐसी जाति में भी जिसमें विधवा पुनर्विवाह रूढ़ि द्वारा अनुज्ञात है संतान पैदा कर सकने वाली आयु की निःसंतान विधवा पुत्री कंठाठ शाखा में पुत्र वाली विवाहित पुत्री के साथ-साथ पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी होने की हकदार नहीं है जब तक कि ऐसी परिस्थितियों में उसे उत्तराधिकार का हकदार बनाने की रूढ़ि का सबूत न हो।[5]

...पुस्तक के लेखकों ...मत।

4.6. मान्य पुस्तक[6] के लेखकों का मत भी यही प्रतीत होता है कि दायभाग विधि में यह निर्योग्यता बांझ पुत्री पर या ऐसी पुत्री पर भी जिसके कि पुत्र होने की सम्भावना नहीं है या जो पहले से ही निःसंतान विधवा है, लागू होती है।

[illegible]

1- विनोद कुमारी देवी बनाम पुरवान गोपाल दासी, (1865)2 डब्ल्यू० आर० सी० आर० 176 (कलकत्ता)।

2- राधाकिशन बनाम राधा राम (1866)6 डब्ल्यू०आर०सी०आर०147 (कलकत्ता)

3- मुकुन्द बनाम मनमोहिनी भी देखिए, (1920)19 सी०डब्ल्यू०एन०472

4- श्रीमती पुनिया बनाम चन्द्रशेखर (1921) आई०एल०आर० 43 इलाहाबाद 450 (दायभाग प्रणाली के अधीन)।

~~5- मार्ग, मैन एण्ड स्टोक्स (1923) पृष्ठ 314-316।~~

5- विनोदिनी बनाम दुखमा, (1920) आई०एल०आर०48 कलकत्ता 300, 302

6- मुल्ला, हिन्दू लॉ (1938), पृष्ठ 840, पैरा 2252,
मुकुन्द बनाम मनमोहिनी, (1920) 19 सी०डब्ल्यू०एन० 472.......

कोई ऐसी स्थिति कि विधवा पुनर्विवाह कर ले और उसे पुत्र हो जाए (1856 के अधिनियम की) धारा 4 द्वारा प्रत्याशित है जो उसे विरासत के अधिकार का दावा करने से निवारित करती है। किन्तु यदि विधवा (विधवा होने के पश्चात्) अपने पिता की मृत्यु के पूर्व विवाह करती है तो धारा 5 उस निर्योग्यता को हटा देगी।[2]

...ार में निःसंतान ...ा की स्थिति।

4.7. उपर्युक्त स्थिति दायभाग के अनुसार थी किन्तु मिताक्षरा विधि भिन्न थी। गौड़ के[3] अनुसार मिताक्षरा में (विभिन्न वर्गों की पुत्रियों के बीच) ऐसा कोई विभेद नहीं है।

...4 को निरसित ...की सिफारिश।

4.8. दाय भाग विधि के अधीन निःसंतान विधवा को निवारित करने का नियम जिसकी हमने ऊपर चर्चा की है[4] और जैसा पहले भी कहा जा चुका है[5] जो अनुमानतः धारा 4 के ध्यान में है, स्पष्टतः हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 द्वारा अतिष्ठित किया जा चुका है जो अब निःसंतान होने के आधार पर किसी निर्योग्यता को स्वीकार नहीं करता जैसा कि पहले चर्चा की जा चुकी है।[6] ऐसी स्थिति में 1856 के अधिनियम की धारा 4 भ्रम पैदा करती है।[7] तदनुसार हम सिफारिश करते हैं कि धारा 4 को निरसित कर दिया जाए।

1- मयने, हिन्दू लॉ एण्ड यूसेज (1923) पृष्ठ 314-315

2- धारा 5 के लिए आगे अध्याय 5 देखिए।

3- गौड़, हिन्दू कोड (1938), पृष्ठ 940, पैरा 2252।

4- पीछे पैरा 4.3 ।

5- पीछे पैरा 4.2 ।

6- पीछे पैरा 4.2 ।

7- पीछे पैरा 4.2 ।

अध्याय 5

कुछ सुरक्षित अन्य अधिकार

धारा 5 ।

5.1. पुनर्विवाह से पैदा होने या जारी रहने वाली निर्योग्यताओं पर विचार करने के बाद 1856 का अधिनियम धारा 5 में कुछ अधिकारों की व्यावृत्ति निम्नलिखित शब्दों में करता है :

"5. धारा 2 से 4 तक में यथाउपबंधित के सिवाय विवाह करने वाली विधवा के अधिकारों की व्यावृत्ति - पूर्ववर्ती तीन धाराओं में यथाउपबंधित के सिवाय पुनर्विवाह के कारण विधवा की किसी सम्पत्ति या किसी अधिकार का, जिसके लिए वह अन्यथा हकदार होती, समपहरण नहीं होगा, और ऐसी प्रत्येक विधवा को, जिसने पुनर्विवाह किया हो, विरासत के वे ही अधिकार प्राप्त होंगे, जो यदि ऐसा विवाह उसका प्रथम विवाह होता, उसे प्राप्त होते ।"

[illegible] 5 का [illegible] ।

5.2. अन्त में यही धारा "पुनर्विवाह से सम्बन्धित सब विधिक बाधाओं को दूर करने के" अधिनियम के मुख्य सिद्धान्त को[1] पुरस्तर शब्दों में प्रतिपादित करती है । इस धारा को दो भागों विभाजित किया जा सकता है । पहले वाला आधा भाग जो "जिसके लिए वह अन्यथा हकदार होती" शब्दों से समाप्त होता है व्यापक शब्दों में अभिव्यक्त है जिससे धारा 2-4 में अन्यथा उपबन्धित को छोड़कर "किसी सम्पत्ति या किसी अधिकार" का समपहरण वर्जित हो जाता । धारा 2-4 द्वारा प्रभावित न होने वाले अधिकार के दृष्टान्त के रूप में उस विधवा की स्थिति के मुकाबले में उसके अपने प्रथम विवाह

~~[illegible]~~

1. पीछे पैरा 2.1.

से हुए पुत्र की, जिसकी मृत्यु विधवा के पुनर्विवाह के पश्चात् हुई हो, सम्पत्ति का विरासत में पाने के अधिकार का निर्धारण कर सकते हैं। अपने पुनर्विवाह के विधवा का तत्पश्चात् अपने पुत्र या पति के अन्य पारम्परिक बंधु का उत्तराधिकारी होने का अधिकार समाप्त नहीं होता।[1] विधान मण्डल का आशय हिन्दू विधवा को, उसके पुनर्विवाह पर, किसी ऐसे अधिकार या हित से वंचित करना नहीं था जो उसे अपने पुनर्विवाह के समय प्राप्त नहीं था। यह प्रतीत होता कि विधवा (माता) की अपने पुनर्विवाह पर "सिविल मृत्यु"[3] हो जाती है, बम्बई के एक मामले में[2] इस विचार पर विनिर्दिष्ट रूप से अस्वीकार की जा चुकी है। पुनर्विवाह के समय अपने पति की सम्पत्ति में उसका कोई हित नहीं था।

5.3. धारा 5 के इस भाग के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि हिन्दू विधि के विभिन्न विषयों पर विधि को संशोधित और संहिताबद्ध करने वाले विधान के अन्तर्गत सम्पत्ति सम्बन्धी बहुत से अधिकार (जैसे विरासत और भरण-पोषण के अधिकार)

---

1. (क) अकोरा सुथ बनाम बोरियानी (1868) 2 बंगाल ला रिपोर्ट्स 199, 205, 206 (पीकॉक मु०न्या० और मैकफर्सन न्या०)
(ख) मादर बल बल्लभ बनाम काशी (1902) आई०एल०आर० 26 बम्बई 368।
(ग) बासव्वा बनाम रायव (1904) आई०एल०आर० 29 बम्बई 91।
(घ) लक्ष्मण राघवजी बनाम शिव रामचन्द्रजी, (1905) आई० एल०आर० 28 मद्रास 425, 427।
2. बासव्वा बनाम रायव (1904) आई०एल०आर० 29 बम्बई 91, 93
3. मैरबाई बनाम चौतमबाई की रीति, ए०आई०आर० 1972 एम०पी० 145।

और अन्य अधिकार (जैसे दत्तकग्रहण और संरक्षकता के अधिकार) आते प्रतीत होते हैं। ऐसे विधान के अन्तर्गत विषयों के बारे में धारा 5 से कोई बाधा नहीं।

तब यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या कोई "सम्पत्ति या अधिकार" है जो ऐसे विधान की परिधि के बाहर है - दूसरे शब्दों में क्या कोई ऐसा "अधिकार या सम्पत्ति" है जिस पर अब भी 1856 के अधिनियम की धारा 5 का पहला वाला आधा भाग लागू होता है। यदि ऐसा है तो आगे यह विचार करना विचारणीय होगा कि यदि धारा 5 न होती तो क्या विधवा की (पुनर्विवाह द्वारा) वह सम्पत्ति या वह अधिकार समपहृत हो जाता।

5.4. ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दुओं को लागू निजी विधि के विभिन्न विषयों जैसे, अर्थात् उत्तराधिकार,[1] भरण-पोषण,[2] विवाह,[3] संरक्षकता[4] और दत्तकग्रहण[5] - संहिताबद्ध करने वाले पश्चात्वर्ती विधान के अन्तर्गत निजी विधि के संबंध में सुसंगत सब तब "सम्पत्ति का अधिकार" हैं जिनकी कल्पना की जा सकती है। धारा 5 का पहला आधा भाग यह सुनिश्चित करता है कि "किसी सम्पत्ति या किसी अधिकार" का पुनर्विवाह के कारण समपहरण धारा 2, 3 और 4 द्वारा स्पष्टतया अभिव्यक्त के सिवाय नहीं होगा। निजी विधि के क्षेत्र में आने वाले

1- पीछे अध्याय 2, ।

2- पीछे अध्याय 2 ।

3- पीछे अध्याय 2 ।

4- पीछे अध्याय 3 ।

5- हिन्दू दत्तकग्रहण और भरण-पोषण अधिनियम 1956 की धारा 7,8,9 और 14(क) तथा आगे पैरा 5.5 भी देखिए।

विभिन्न विधानों की संवीक्षा पर हमें हिन्दू विधि का कोई ऐसा अधिनियमित विधान नहीं मिल सका जिसके बारे में कोई ऐसा नियम जैसा धारा 5 में प्रकल्पित है (अर्थात् "किसी सम्पत्ति या अधिकार" का विधवा के पुनर्विवाह पर समपहरण का नियम) लागू भी होता कहा जा सकता है। ऐसी स्थिति को देखते हुए धारा 5 के पहले वाले भाग को अनावश्यक समझकर निरसित कर देना चाहिए।

5.5. अपनी पड़ताल पूरी करने के लिए यह समुचित होगा कि हम दौरान में दत्तक पुत्र सम्बन्धी स्थिति पर भी विचार कर लें। 1856 के अधिनियम की धारा 5 में विनिर्दिष्ट रूप से दत्तक पुत्र का उल्लेख नहीं है और धारा 2,3 तथा 4 में भी उसका उल्लेख नहीं है। किन्तु यह कहना ऐसा उचित होगा कि दत्तक लेने या पुत्र गोद लेने के बारे में हिन्दू विधवा का अधिकार अब अनन्य रूप से हिन्दू दत्तक ग्रहण और भरण-पोषण अधिनियम द्वारा शासित होता है[1] और अब पुनर्विवाह के प्रसंग में इस अधिकार की बाबत प्रश्नों के समाधान के लिए 1856 के अधिनियम की धारा 5 का आश्रय लेने का कोई प्रश्न नहीं उठता।

5.6. पूर्वोक्त के धारा 5 के पहले वाले भाग का निरसन की मांग। धारा 5 का पश्चात्वर्ती भाग अधिक विनिर्दिष्ट रूप से विधवा के निरर्हता से अधिकारों से सम्बन्धित है। इस प्रयोजन के लिए वह उसके पुनर्विवाह को प्रथम विवाह के समान मानता है। जैसे कि धारा इस प्रकार है

1- धारा 7,8,9 और 14(डी), हिन्दू दत्तकग्रहण और भरण-पोषण अधिनियम, 1956।

इस प्रावधान है कि "ऐसी प्रत्येक विधवा को, जिसने पुनर्विवाह किया हो, विरासत के वे सब अधिकार प्राप्त होंगे, जो, यदि ऐसा विवाह उसका प्रथम विवाह होता, उसे प्राप्त होते" अब स्पष्टीकरण अपेक्षित नहीं है। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में सामान्यविवाहित स्त्रियों की उत्तराधिकार की विधि निर्धारित की है इस प्रावधान[1] को स्वीकार करती है और पत्नी (विधवा) के विरासत के अधिकारों के बारे में कोई विभेद नहीं मानती चाहे वह उसका प्रथम विवाह हो या नहीं। इस प्रकार पश्चात्वर्ती उक्त भाग भी अब अनावश्यक हो गया है। यदि "ऐसी प्रत्येक विधवा जिसने पुनर्विवाह किया हो" शब्द 1856 के बाद के पुनर्विवाहों को उचित रूप से लागू हो भी सकते हों तो भी धारा के इस भाग की अब कोई उपयोगिता नहीं रही।

ा 5 को
ा करना।

5.7. ऐसी स्थिति में पूरी की पूरी धारा 5 को निरसित करना आवश्यक है।

1- पीछे अध्याय 2 ।

अध्याय 6

विवाह-कर्म और वैधता

1. विवाह-कर्म

धारा 6 – विवाह-कर्म ।

6.1. 1856 के अधिनियम की धारा 6 मात्र यह उपबन्धित करती है कि किसी हिन्दू स्त्री के विवाह पर जिसका पहले विवाह नहीं हुआ है, जिन शब्दों का उच्चारण, कर्मों का पालन या वचनबन्ध उसके विधिमान्य विवाह के लिए पर्याप्त है, उन्हीं शब्दों के उच्चारण, कर्मों के सम्पादन या वचनबन्ध का हिन्दू विधवा के विवाह पर भी वही प्रभाव होगा । इस धारा का महत्व अब एक मुकदमे में प्रकट होता है । एक विधवा का विवाह परम्परागत रूप रीति में हिन्दू धार्मिक कृत्यों और कर्मों के बिना हुआ और पुनर्विवाह सिद्ध हुआ अभिनिर्धारित नहीं किया गया । इस अधिनियम के अधीन भी अपेक्षित धार्मिक कर्मों के पर्याप्त पालन के बिना विधिमान्य विवाह नहीं हो सकता ।

हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन स्थिति ।

6.2. विवाह कर्मों का विषय अब हिन्दू विवाह अधिनियम[2] के अधीन आता है । हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 7 इस प्रकार है :-

"7. हिन्दू विवाह के लिए कर्मकाण्ड

(1) हिन्दू विवाह उसके पक्षकारों में से किसी की भी रूढ़िगत रीतियों और कर्मकाण्ड के अनुसार अनुष्ठापित किया जा सकेगा ।

1- रामप्यारी बनाम मु0 किशना, ए0 आई0 आर0 1930, अवध 426, 428 ।

2- हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, धारा 7 ।

(2) जहाँ ऐसी रीतियों और कर्मकांड के अन्तर्गत सप्तपदी (अर्थात् अग्नि के समक्ष वर और वधू द्वारा संयुक्त: सात पद चलना) आता है वहाँ विवाह पूर्ण और आबद्धकर तब होता है जब सातवाँ पद चल लिया जाता है।"

धारा 6 को निरसित करने की सिफारिश।

6.3. उपर्युक्त स्थिति को देखते हुए 1856 के अधिनियम की धारा 6 निरर्थक है और तदनुसार हम सिफारिश करते हैं कि उसे निरसित कर दिया जाए।

11. धारा 7 के अधीन विवाह में संरक्षकता और हिन्दू विधि।

धारा 7 – अवयस्क विधवा के पुनर्विवाह के लिए सम्मति।

6. 4. अब हम 1856 के अधिनियम की धारा 7 पर विचार करते हैं। धारा इस प्रकार है –

"7. अवयस्क विधवा के पुनर्विवाह के लिए सम्मति

यदि पुनर्विवाह करने वाली विधवा अवयस्क है, जिसका विवाहोत्तर संभोग नहीं हुआ है तो वह अपने पिता की सम्मति के बिना, या यदि उसका पिता नहीं है तो अपने पितामह या यदि उसका पितामह नहीं है तो अपनी माता या इन सबके न होने पर अपने ज्येष्ठ भ्राता या भ्राताओं के भी न होने पर अपने निकटतम पुरुष नातेदार की सम्मति के बिना पुनर्विवाह नहीं करेगी।

*इस धारा के प्रतिकूल किए गए विवाह का दुष्प्रेरण करने के लिए शास्ति : इस धारा के उपबन्धों के प्रतिकूल किए गए विवाह का जानबूझकर दुष्प्रेरण करने वाले सभी व्यक्ति एक वर्ष से अनधिक की अवधि के कारावास से या जुर्माने से या दोनों से दण्डनीय होंगे।

"ऐसे विवाह का प्रभाव : परन्तुक : और इस धारा के उपबन्धों के प्रतिकूल किए गए सभी विवाह न्यायालय द्वारा शून्य घोषित किए जा सकेंगे : परन्तु इस धारा के उपबन्धों के प्रतिकूल किए गए किसी विवाह की विधि-मान्यता सम्बन्धी प्रश्न के बारे में यथापूर्वोक्त सम्मति की उपधारणा की जाएगी जब तक कि उसके प्रतिकूल साबित न किया जाए और कोई भी ऐसा विवाह, विवाहोत्तर संभोग के पश्चात्, शून्य घोषित नहीं किया जाएगा ।

"वयस्क विधवा के पुनर्विवाह के लिए सम्मति :

किसी ऐसी विधवा के बारे में जो वयस्क है या जिसका विवाहोत्तर संभोग हो चुका है, उसका पुनर्विवाह विधिपूर्ण तथा विधिमान्य बनाने के लिए उसकी अपनी सम्मति पर्याप्त होगी ।"

धारा 7 का विश्लेषण ।

6.5. 1856 के अधिनियम[1] की धारा 7 से होने वाली स्थिति का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है -

(क) कोई विधवा जो अवयस्क है और जिसका विवाहोत्तर संभोग नहीं हुआ है अपने संरक्षक की सम्मति से ही पुनर्विवाह कर सकती है । यह धारा के प्रथम पैरा में स्पष्ट रूप से अधिनियमित किया गया है ।

(ख) कोई विधवा जो वयस्क हो गई है इस बात पर ध्यान दिए बिना कि उसकी विवाहोत्तर संभोग हुआ है या नहीं हुआ है, संरक्षक की सम्मति के बिना पुनर्विवाह कर सकती है । यह धारा 7 से विवदित हुआ प्रतीत होता है क्योंकि इस सम्बन्ध में कोई प्रतिषेध स्पष्ट रूप से अधिनियमित नहीं है ।

1- पीछे पैरा 6. 4

(ग) कोई विधवा भी जिसका विवाहोत्तर संभोग हो चुका हो अवयस्क होते हुए भी ऐसी सम्मति के बिना पुनर्विवाह करने के लिए सदाम है । यह भी धारा 7 से विवदित हुआ प्रतीत होता है ।

विवाह के प्रसंग में "अवयस्कता" की हम बाद में[1] चर्चा करेंगे ।

ारा 7 के अधीन संरदाक ।

6.6. यह बात तो हुई उन परिस्थितियों के बारे में जिनमें विधवा के विवाह के लिए सम्मति अपेदित है या नहीं । जहाँ संरदाक की सम्मति अपेदित है वहाँ 1856 के अधिनियम की धारा 7 के अधीन (अधिमान-क्रम में) संरदाक निम्नलिखित है[2] :-

1- पिता	2- पितामह
3- माता	4- ज्येष्ठ भ्राता
5- अन्य पुरुष नातेदार ।	

ाज्ञवल्क्य के अनुसार रदाक ।

6.7. 1856 के अधिनियम[3] की धारा 7 में उल्लिखित पांच व्यक्ति वे ही हैं जो याज्ञवल्क्य[4] द्वारा उल्लिखित किए गए हैं । किन्तु याज्ञवल्क्य में माता को सूची के अंत में रखा गया है जब कि धारा 7 में वह बीच में है । याज्ञवल्क्य[5], जिसका मूल पाठ मिताक्षार में अपनाया गया है और गौड़ीया शाखा को छोड़ सभी शाखाओं में अपनाया गया है घोषित करता है[7] :-

---

1- आगे पैरा 6.10 ।

2- पीछे पैरा 6.4 ।

3- पीछे पैरा 6.6 ।

4- याज्ञवल्क्य - (पिता, पितामह, भ्राता, अन्य पुरुष नातेदार, माता)

5- याज्ञवल्क्य, 1, 63 : 28.0. ।

6- बनर्जी, मैरेज एण्ड स्त्रीधन (1923), पृष्ठ 48-49 ।

7- गौड़, हिन्दू कोड (1938) भी देखिए, पृष्ठ 117, पैरा 357 ।

"पिता, पितामह, भ्राता, सकुल्य और माता जो सुस्थचित्त हों, ये ही वे व्यक्ति हैं जो विवाह करा सकते हैं - पश्चात्वर्ती क्रमशः पूर्ववर्ती की असफलता पर ।"

बंगाल शाखा में स्थिति ।

6. 8. जहाँ तक बंगाल शाखा का सम्बन्ध है, रघुनन्दन[1] ने जो विवाह के विषय पर उस शाखा के प्रमुख विद्वान हैं, याज्ञवल्क्य के उपर्युक्त पाठ की अन्य मुनियों, विष्णु और नारद के पाठों से तुलना करके, संरक्षकता का क्रम निकाला है जो बंगाल में विधि का रूप धारण किए हुए है और जो इस प्रकार है[2] :

"पिता, पितामह, भ्राता, सकुल, मातामह, मामा, और माता आदि सुस्थचित्त के हों तो क्रमिक रूप में लड़की का विवाह करने के हकदार हैं ।"

रक्षक की सम्मति के बिना विवाह का प्रभाव ।

6.9. किन्तु यह बताना उचित होगा कि संरक्षक की सम्मति के बिना किया गया विवाह फिर भी कार्य सम्पन्न होने पर वैध माने जाने के सिद्धान्त पर विधिमान्य हो सकता है । मु० न्या० सार्जेन्ट द्वारा बम्बई के एक मामले में निम्नलिखित अभिमत सुसंगत है[3] :

"पक्षकारों के एक निश्चित आयु प्राप्त कर लेने से पूर्व विवाह की विधिमान्यता की पूर्ववर्ती शर्त के रूप में जनकों और संरक्षकों की सम्मति यूरोप के अधिकतर देशों की विधि द्वारा अपेक्षित है । किन्तु आशय सदा बिलकुल स्पष्ट भाषा में अभिव्यक्त किया गया है जिससे कि कोई

1- उद्वहतत्व, इंस्टीट्यूट्स, ग्रन्थ 2, पृष्ठ 70 ।

2- बनर्जी, मैरेज एण्ड स्त्रीधन (1923), पृष्ठ 28-29 ।

3- खुशालचन्द लालचन्द बनाम बाई मणी (1886) आई०एल०आर० 11 बम्बई, 247, 256 ।

शंका न रहे । पचीस वर्ष से कम आयु वाले पुरुष की जनकों की सम्मति के बिना विवाह की अविधिमान्यता फ्रेंच विधि द्वारा स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त की गई है जिसमें घोषणा की गई है कि ऐसा पुरुष सम्मति के बिना 'विवाह करने में अयोग्य' है : कोड नेपोलियन देखिए । इसके अतिरिक्त भी इंग्लैण्ड में लार्ड हार्डविक के अधिनियम में, जो बहुत हद तक जनकों या संरक्षकों की सम्मति के बिना अवयस्कों के विवाहों को रोकने के लिए पास किया गया था, घोषित किया गया है कि उन व्यक्तियों का विवाह अकृत और शून्य है जिन्होंने अनुज्ञप्ति देने का प्राधिकार रखने वाले व्यक्ति से ऐसी अनुज्ञप्ति के बिना (जिसका जनकों और संरक्षकों की सम्मति के बिना दिया जाना निषिद्ध है) जानबूझकर विवाह किया है । ऐसी कोई बात (जैसा कि हम पहले बता चुके हैं) हिन्दू शास्त्रों में नहीं पाई जाती, और उसके बिना प्राधिकरण और युक्ति दोनों से अपेक्षित है कि सम्पन्न होने पर वैध माने जाने के सिद्धान्त पर विवाह का विधिमान्य के रूप में समर्थन किया जाना चाहिए ।"

हिन्दू विधि के अधीन विवाह की आयु ।

6.10. विवाह के संदर्भ में 'अवयस्कता' की स्थिति को हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के पास किए जाने के पहले की स्थिति के संदर्भ में संक्षेप में उल्लिखित करना चाहिए । भारतीय वयस्कता अधिनियम[1] ने "विवाह, मेहर, विवाह-विच्छेद और दत्तकग्रहण के मामले में कार्य करने की किसी व्यक्ति की क्षमता को प्रभावित नहीं किया ।"[2] अत: इस

1- गौड़, हिन्दू कोड (1938) पृष्ठ 117, पैरा 357 ।

2- भारतीय वयस्कता अधिनियम 1873, धारा 2(क) ।

मामले पर हिन्दू विधि के सिद्धान्तों के निर्देश से विचार करना पड़ा। हिन्दू विधि के अनुसार[1] वयस्कता की आयु सोलहवें (बंगाल शाखा में पन्द्रहवें) वर्ष के पूरा हो जाने पर प्राप्त की जाती है और उससे कम आयु वाले व्यक्तियों का विवाह उनके संरक्षकों के माध्यम से सिवाय नहीं किया जा सकता जिसका अधिकार याज्ञवल्क्य के ग्रन्थ पर निर्भर करता है जिसे पहले ही उद्धृत किया जा चुका है।[2] इस प्रकार हिन्दू विधि के अधीन कोई लड़की 15 वर्ष की आयु प्राप्त करने से पूर्व संरक्षक की सम्मति के बिना विवाह नहीं कर सकती थी।

III. हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के अधीन स्थिति

प्रारम्भ में यथा अधिनियमित 1955 के अधिनियम के अधीन स्थिति।

6. 11.[3] यह स्थिति 1955 तक रही। (प्रारम्भ में यथा अधिनियमित) हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के अधीन जहां वधू ने अठारह वर्ष की आयु पूरी न की हो वहां विवाह के लिए उसके संरक्षक की, यदि कोई हो, सम्मति के लिए उपबन्ध किया गया था। संरक्षकों की सूची अधिनियम में दी गई थी।

ससुर और सास की स्थिति।

6. 12. विधवा पुत्रवधू के पुनर्विवाह के सम्बन्ध में ससुर की स्थिति के बारे में कुछ प्रश्न पैदा हो गए थे। इलाहाबाद के एक मामले में[4] विधवा का विवाह[5] कराने के लिए ससुर को सक्षम माना गया।[6] यथा संशोधित हिन्दू विवाह

1- मुल्ला, हिन्दू ला (1974), पृष्ठ 511, पैरा 433 ।

2- पीछे पैरा 6.5 ।

3- (प्रारम्भ में यथा अधिनियमित) धारा 6 के साथ पढ़े जाकर हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, धारा 5 (vi)

4- पारस राम बनाम राज्य, ए०आई०आर० 1960, इलाहाबाद 749

5- डैरेट द्वारा (1961) में आलोचना, 63 बम्बई, एल०आर० (जर्नल) पृष्ठ 1 से 4 और लक्ष्मण प्रसाद द्वारा लेख ए०आई०आर० 1960 जर्नल पृष्ठ 92 से 94 भी देखिए।

6- आगे पैरा 6.13 ।

अधिनियम के अधीन वर्तमान स्थिति को देखते हुए इस मत की कोई गहरी जांच करना अनावश्यक है ।

यहां पर यह बताना लाभदायक होगा कि 1955 के अधिनियम पास होने से पहले भी लाहौर उच्च न्यायालय[1] ने अभिवारित किया था कि न तो हिन्दू विधि के अधीन और न 1856 के अधीन ही सास को अपनी विधवा पुत्र वधू का विवाह कराने का अधिकार है (उस मामले में विधवा पुत्र वधू 16 वर्ष से कम की थी) उस मामले में यह मत प्रकट किया गया कि 1856 के अधिनियम की धारा 7 में (यदि उस मामले में लागू भी थी तो) उसमें सास की चर्चा नहीं की गई थी । हिन्दू विधि के विषय[2-4] पर ग्रन्थों को देखा गया और अंग्रेजी

1- संतराम बनाम क्राउन (1929) आई0 एल0 आर0 11 लाहौर 178 (टेकचन्द और आगा हैदर न्या0)

2- याज्ञवल्क्य I, 63-64 ।

3- विष्णु XXIV, 38-39 ।

4- नारद XII, 20-21 ।

विधि[1] को भी देखा गया किन्तु इन ग्रन्थों में भी विधवा के विवाह के लिए एक संरक्षक के रूप में सास का उल्लेख नहीं था।

में यथासंशोधित विवाह अधिनियम न स्थिति।

6.13. जहां प्रारम्भ में यथा अधिनियमित हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के अधीन यह स्थिति थी वहां यह बताना उपयुक्त होगा कि 1978 में[2] यथासंशोधित उस अधिनियम के अधीन अठारह वर्ष से अधिक आयु की ही कोई लड़की विधिपूर्णतया विवाह कर सकती है और उसके विवाह के लिए संरक्षक की सम्पति अभिप्राप्त करने का प्रश्न अब पैदा ही नहीं हो सकता चाहे वह अविवाहित हो या विधवा हो।

बाल विवाह अवरोध (संशोधन) अधिनियम 1978[3] की अनुसूची द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 5(iii) को संशोधित किया गया जिससे (वर के लिए)

1- पुनर्विवाह अधिनियम 1823 (अंग्रेजी), धारा 16 ।

2- 1978 का केन्द्रीय अधिनियम 2 ।

3- 1978 का केन्द्रीय अधिनियम 2 ।

"अठारह वर्ष" और (वधू के लिए) "पन्द्रह वर्ष" के स्थान पर क्रमश: "इक्कीस वर्ष" और "अठारह वर्ष" शब्द रख दिए गए। पारिणामिक परिवर्तन के तौर पर धारा 5 (vi) और धारा 6 जो विवाह में संरक्षकता से सम्बद्ध थीं, उसी संशोधित अधिनियम द्वारा लुप्त कर दी गईं।

धारा 17 को निरस्त करना।

6.14. ऐसी स्थिति में 1856 के अधिनियम की धारा 7 बिल्कुल पुरानी पड़ गई है और निरस्त कर दी जानी चाहिए।

अध्याय 7

निष्कर्ष

पूर्वगामी पैराओं को देखते हुए हम सिफारिश करते हैं कि हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856 (1856 का 15) पूर्णत: निरस्त कर दिया जाए । यह कहना आवश्यक नहीं है कि ऐसे निरसन को साधारण खण्ड अधिनियम 1897 की धारा 6 लागू होगी जिससे कि पहले से ही निहित अधिकारों की व्यावृत्ति हो जाए और उस धारा में व्यवहृत अन्य मामलों की स्थिति विनियमित हो जाए ।

पी० वी० दीक्षित	अध्यक्ष
एस० एन० शंकर	सदस्य
गंगेश्वर प्रसाद	सदस्य
पी० एम० बख्शी	सदस्य-सचिव

14 दिसम्बर 1979 ।

1- साधारण खण्ड अधिनियम 1897, धारा 6 ।

परिशिष्ट

हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1856 की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि[1]

1 प्रारम्भिक

भारतीय विधि आयुक्त 1837

हिन्दू विधवाओं का विवाह कराने की विधिक बाधाओं को हटाने के विषय की ओर ध्यान/ हालांकि सरसरी तौर पर - भारतीय विधि आयुक्तों ने दिया था जो लार्ड मैकाले के नेतृत्व में मुख्यत: भारत की दण्ड विधियों को संहिता बद्ध करने की समस्या पर विचार कर रहे थे। उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों में सदर निजामत अदालत ने विधि आयुक्तों को सूचना दी कि उनकी अधिकारिता के अधीन प्रान्तों में बाल-हत्या एक प्रचलित अपराध था। उन्होंने यह सिफारिश की कि किसी स्त्री द्वारा अपने मृत शिशु के शरीर को गुप्त रूप से निपटाने और उसके जन्म को छिपाने का प्रयास कदाचार माना जाना चाहिए।

न्यायालय चाहता था कि प्रत्येक प्रेसीडेंसी के सुप्रीम कोर्ट और स्ट्रेट्स में ~~[illegible]~~ रिकार्डर के कोर्ट की अधिकारिता के अधीन प्रवृत्त विधि को ईस्ट इंडिया कम्पनी के स्वाधीन क्षेत्रों पर लागू कर दिया जाए।

---

1. 1856 के अधिनियम 15 से सम्बद्ध राष्ट्रीय अभिलेखागार फाइल, ग्रंथ 1 और 2 पर आधारित।

11 भारतीय विधि आयुक्त

विधवा पुनर्विवाह के प्रतिषेध और शिशु हत्या के बीच कार्यकारण-सम्बन्ध को समझते हुए भारतीय विधि आयुक्तों ने अपने 4 जुलाई, 1837 के पत्र द्वारा भारत सरकार को बताया कि अधिकतर यह अपराध उस विधि के कारण होता है जो हिन्दू विधवाओं को दूसरा वैध विवाह करने से रोकती है। आयुक्त यह बात समझते थे कि विधि के परिवर्तन मात्र का इस बुराई को दूर करने की दिशा में कोई तुरन्त और प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं होगा किन्तु इस बात की सम्भावना से इंकार नहीं करते थे कि विधि के परिवर्तन से इस मामले में विचारों के परिवर्तन को प्रेरणा मिलेगी। उनका ख्याल था कि शिशु हत्या को रोकने की दिशा में, अधिकतम दाण्डिक विधियों के मुकाबले में, ऐसी विधि अधिक कारगर होगी।

सदर न्यायालयों की रायें।

भारतीय विधि आयुक्तों ने, अपने 30 जून, 1837 के पत्र द्वारा कलकत्ता, इलाहाबाद, मद्रास और बम्बई के सदर न्यायालयों से उनकी राय पूछी थी[1] कि क्या किसी ऐसी विधि पर कोई आपत्ति होगी जो हिन्दू विधवाओं का पुनर्विवाह प्राधिकृत करे। इसके उत्तर में, कलकत्ता सदर न्यायालय ने (जिसमें दो न्यायाधीश, एक अस्थायी न्यायाधीश, दो शासकीय न्यायाधीश और एक कार्यकारी अस्थायी न्यायाधीश था) निस्संकोच अपनी यह स्पष्ट राय प्रकट की कि जिस प्रकार

---

1. भारतीय विधि आयुक्तों का पत्र ता० 30 जून, 1837.

की विधि की प्रकल्पना की गई है वह सरकार द्वारा दिए गए वचन का प्रत्यक्ष और खुला अतिक्रमण किए बिना पास नहीं की जा सकती। न्यायालय का यह ख्याल था कि विवाह को हिन्दू केवल सिविल संविदा नहीं समझते और शैशवावस्था में मंगनी से लेकर उसकी संसिद्धि तक के उसके समस्त समस्त क्रमों में सारे संस्कारों के अन्तर्गत पूर्णत: धार्मिक अनुष्ठान होते हैं और उनके शास्त्रों से यह स्पष्ट है तथा उन सबका यह पक्का विश्वास है कि विधवा के पुनर्विवाह के अन्तर्गत इस लोक में दोष और कलंक तथा परलोक से अपवर्जन है। न्यायालय ने अपने मत के समर्थन में मिस्टर कोलब्रुक के डाइजेस्ट आफ द हिन्दू ला के प्रति निर्देश किया और यह प्रकट किया कि जो बात [इतनी] वांछनीय है उसकी प्राप्ति इतनी कठिन है। उत्तर-पश्चिमी प्रान्त की सदर दीवानी अदालत ने भी (जिसमें चार न्यायाधीश थे) प्रस्तावित विधान का वैसे ही आधारों पर विरोध किया और यह भी कहा कि उससे गलतफहमी होने और उसके विकृत होने की सम्भावना है और यह भी हो सकता है कि इससे बहुत अधिक और व्यापक असन्तोष पैदा हो जाए तथा उसके मुकाबले में या उसके अनुरूप कोई लाभ भी न हो।

विवाहोत्तर संयोग

मद्रास सदर और फौजदारी न्यायालयों के न्यायाधीशों ने भी उपर्युक्त प्रकार का मत इस आधार पर प्रकट किया कि प्रबुद्ध वर्ग के हिन्दू ऐसे विधान को उन्हें निचले और जातिच्युत लोगों के साथ (जिनमें विधवाओं का दूसरा विवाह मान्य था) मिलाने का

प्रयास समझेंगे । उन्होंने चेतावनी दी कि ऐसा अधिनियम एक मृत पत्र सा साबित नहीं होगा बल्कि सब वरिष्ठ वर्गों में इस बात के लिए एकता ला देगा कि वे अधिकाधिक कट्टरपन से उस प्रचलित रूढ़ि को बनाए रखें जिसके विरुद्ध प्रस्तावित विधान लागू किया जाएगा और इस प्रकार निम्न वर्गों से उन्हें पृथक करने वाले विभेदों को ज्यों के त्यों बनाए रखने की उनकी प्रवृत्ति को मजबूत बनाएगा ।

III सुधार के लिए अर्जी और प्रारूप विधेयक

ईश्वर चन्द्र की अर्जी और प्रारूप विधेयक ।

इसके 18 वर्ष पश्चात् ईश्वर चन्द्र शर्मा ने, जो बाद में ईश्वर चन्द्र विद्यासागर के नाम से प्रख्यात हुए, 4 अक्तूबर, 1855 को संस्कृत कालेज, कलकत्ता से एक हजार अन्य व्यक्तियों के साथ एक अर्जी पर हस्ताक्षर किए जिसमें उस रूढ़ि की बुराइयों की निन्दा की गई थी जिससे हिन्दुओं में विधवाओं का विवाह विधि द्वारा प्रतिषिद्ध था और विधिक बाधाओं को हटाने के लिए अनुरोध किया गया था क्योंकि वह रूढ़ि हर मॅजेस्टी और ईस्ट इंडिया कम्पनी के न्यायालयों द्वारा न्यायिकत: मान्य की गई थी । ईश्वर चन्द्र शर्मा ने "हिन्दू विधवाओं के विवाह की सब विधिक बाधाओं को हटाने के लिए" एक प्रारूप विधेयक भी संलग्न किया ।

ईश्वर चन्द्र के प्रस्ताव पर जो प्रतिक्रिया हुई उसने उस काल के हिन्दू समाज की सामाजिक दशाओं के दर्पण का काम किया ।

विधेयक पर प्रतिक्रियाएं ।

बारासात और उसके आस पास के कुछ निवासियों ने श्रीयुत ईश्वर चन्द्र विद्यासागर को एक "महान देशभक्त और हिन्दू विधि का विद्वान " कहा । दूसरी ओर जिला टिपरा के कुछ निवासियों ने तारीख 5 अप्रैल 1856 को अपनी अर्जी में 1973 के सरकारी विनियम के आश्वासनों को/दुहराकर यह कहा कि जिन हिन्दुओं ने सरकार से प्रस्तावित विधि को प्रवृत्त करने के लिए कहा है वे "किसी अजाति के हैं " जो धार्मिक विधि के अधिदेशों के स्थान पर स्वयं अपनी राय का अनुसरण करना पसन्द करते हैं।

पूना के ब्राह्मणों ने तारीख 27 फरवरी ,1856 को अपनी अर्जी से प्रस्तावित विधान का विरोध किया और यह मत प्रकट किया/कि जो इस विधान के पक्ष में हैं वे हिन्दू नहीं होंगे ।

पूना की अर्जी से यह बात जाहिर होती है कि सरकार को दिए जाने वाले अभ्यावेदनों पर किस प्रकार हस्ताक्षर प्राप्त किए गए । ऐसा प्रतीत होता है कि एक कोई "बवा पूसरी "(दुकानदार) हस्ताक्षर लेने गया और हस्ताक्षर लेने के प्रमाणस्वरूप बांई ओर ऊपरी सिरे पर अपना नाम लिख दिया । कुछ प्रकटतः सावधान हस्ताक्षरकर्ताओं ने अपने हस्ताक्षरों के नीचे "पुनर्विवाह के विरुद्ध होते हुए हस्ताक्षरित " पृष्ठांकन कर दिया जिससे यह सुनिश्चित हो जाए कि हस्ताक्षर वाले पृष्ठ किसी अन्य विषय के अभ्यावेदन से संलग्न नहीं किए जाएंगे । यह महत्वपूर्ण है कि हस्ताक्षर

लेने वाले "अला प्रसारी" ने अपने हस्ताक्षर सिलसिलेवार आम हस्ताक्षरों में नहीं किए, शायद इसलिए कि ब्राह्मण न होने के कारण उसे किसी ऐसी विधि की आवश्यकता नहीं थी। यद्यपि हस्ताक्षर मुख्यत: देवनागरी और मोदी लिपि में हैं तथा कदा तेलगू हस्ताक्षर भी दिखाई देते हैं और फारसी शब्द "बिन" या "का पुत्र" भी सामान्यतया प्रयुक्त किए गए हैं। बंगाल से आने वाली अर्जियों में हस्ताक्षर अधिकतर अंग्रेजी और बंगाली में थे किन्तु कहीं कहीं देवनागरी लिपि में "श्री रामदयाल, तर्क वाचस्पति" भी दिखाई पड़ते थे।

मैमन सिंह जिले के निवासियों ने विद्यासागर की कार्रवाई को एक ऐसे व्यक्ति का कार्रवाई कहा जो "बहुत ही विचारहीन और विवेकहीन नवयुवक था जिसे इतने असीम कष्ट भुगतने पड़ेंगे ? जिन्हें भगवान ही भली भांति जानता है।"

ऊपरी क्षेत्र के निवासी।

ऊपरी क्षेत्र के निवासी 784 अर्जीदार जो कलकत्ते में रह रहे थे, उन्होंने भूतपूर्व नवाब के शासन का निर्देश किया जब कि उनकी धार्मिक प्रथाएं नष्ट की जा रही थीं और सम्मानित कम्पनी के शासन को धन्यवाद दिया जिसके अधीन वे अपने को बहुत सुरक्षित पा रहे थे। अर्जीदारों ने यह शंका व्यक्त की कि यदि प्रस्तावित विधेयक विधि बन गया तो फिर से वैसी ही हालत हो जाएगी जैसी नवाब के अधीन थी अर्थात "जो कोई चाहेगा किसी की भी बीवी

के साथ भाग जाएगा। " चटगांव के कुछ निवासियों को भी यही शिकायत थी जिनको यह डर था कि स्त्रियां अपने यारों के साथ भाग जाएंगी (जिनके लिए वे "बहादुर" शब्द का प्रयोग करती थीं) । दूसरी ओर जिला बकारगंज के निवासियों ने तारीख 18 जुलाई 1856 की अपनी अर्जी में यह भविष्यवाणी की कि "किसी भी दुष्ट प्रकृति वाली नौजवान खूबसूरत महिला के लिए नव-युवक बदनाम लंपटों की चिकनी चुपड़ी बातों से सहमत होना और तदनुसार अपने गरीब और बदसूरत पतियों की जान लेने का प्रयत्न करना कभी भी असाधारण बात न होगी । "

पण्डितों का मत ।

991 व्यक्तियों ने जो अपने आपको "हिन्दू विधि के प्रोफेसर, नदिया त्रिवेणी भातपाड़ा, बांसवाड़ा और अन्य स्थानों के निवासी" कहते थे, "यह अवसर करार आने पर कि एक आधुनिक पण्डित, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने, हाल ही में नए उठते हुए वर्ग के कुछ नवयुवकों के साथ मिलकर, हिन्दू विधवाओं के पुनर्विवाह को वैध बनाने के लिए विधान बनवाना चाहा है" 29 फरवरी, 1856 को लेजिस्लेटिव काउंसिल को अर्जी दी जिसमें काउंसिल का ध्यान ऐसे विवाहों के विरुद्ध शास्त्रों के व्यादेशों की ओर आकर्षित किया । उन्होंने वेद, मनु की संहिता, महाभारत प्रथम खण्ड, आदित्य पुराण, रत्नाकर निर्णय सिंधु, स्मृति और मदन पारिजात से उद्धरण दिए । उपर्युक्त में से तीन अन्तिम प्राधिकृत ग्रंथों में निम्नलिखित समान धर्मा-देश थे : "विधवा का विवाह, सबसे बड़े भाई को अधिकांश भाग का प्रदान, वृषभ की बलि, किसी

व्यक्ति को उसके भाई की विधवा से पुत्रोत्पत्ति के लिए नियुक्ति और तपस्वी होने के संकेत स्वरूप मिट्टी का पात्र लेकर चलना, ये पांच बातें कलियुग में प्रतिषिद्ध हैं।"

यह विरोध पत्र $3' \times 2\frac{1}{2}'$ आकार के एक पार्चमेंट कागज में अर्जी के रूप में आया जिस पर राजा राधाकान्त बहादुर, राजा कालिकृष्ण बहादुर, राजा अपूर्वकृष्ण बहादुर, राजा कमल कृष्ण बहादुर, राजा नरेन्द्र कृष्ण बहादुर और विधेयक का विरोध करने वाले अन्य व्यक्तियों के हस्ताक्षर थे।

जनमत के लिए विधेयक का प्रकाशन।

IV विधेयक का प्रकाशन

"हिन्दू विधवाओं के विवाह की सब विधिक बाधाओं को हटाने के लिए" विधेयक के जनमत मालूम करने हेतु प्रकाशन के पश्चात, विधेयक के सम्बंध में 51 अर्जियां प्रस्तुत की गईं, जिनमें से 5191 व्यक्तियों द्वारा हस्ताक्षरित 23 अर्जियां प्रस्तावित विधान के सिद्धान्त के पक्ष में थीं और 51746 व्यक्तियों द्वारा हस्ताक्षरित 28 अर्जियां विधान के विरुद्ध थीं। विधान के समर्थन में एक अर्जी कलकत्ता मिशनरी कान्फ्रेंस के सदस्यों द्वारा प्रस्तुत की गई थी।

अन्तःकरण की स्वतंत्रता के अधिकार की मान्यता- उद्देश्यों और कारणों का कथन।

दस इसके मुकाबले में एक के अनुपात में विरोध के होते हुए विधेयक को लोकतांत्रिक विधायी प्रक्रिया में कभी भी कानून संहिता में स्थान न मिलता। किन्तु 17 नवम्बर, 1854 को मिस्टर ग्रान्ट द्वारा तैयार किए गए

उद्देश्यों और कारणों के कथन मे इस बात को अन्तर्रेखांकित किया कि विधेयक का उद्देश्य अवादियों और उन सब लोगों को जो उनसे सहमत हैं या जो तत्पश्चात उनसे सहमत हो जाएं, किन्हीं अन्य लोगों को बाधित किए बिना निर्वैदिक अनुतोष प्रदान करना है। मि० ग्रान्ट ने इस सुविख्यात हिन्दू सिद्धान्त का निर्देश किया कि जो हिन्दू विधवा सती नहीं होती (जो कार्य भारत में अब नहीं किया जा सकता) उसे अत्यधिक कष्टकारी शारीरिक यातना का जीवन बिताना पड़ेगा। जो लोग अवादियों से सहमत थे उन्होंने पुनर्विवाह का विख्यात विकल्प अनुज्ञात किया। जो लोग सहमत नहीं थे उन्होंने कोई विख्यात विकल्प अनुज्ञात नहीं किया और न्यायालयों द्वारा परिभाषित विधि ने भी दोनों में से किसी भी वर्ग के को कोई विख्यात विकल्प अनुज्ञात नहीं किया। मि० ग्रान्ट ने दलील दी कि यदि किसी हिन्दू पिता को विवेक, सुविज्ञता और अन्तःकरण उसे अपनी छोटी बालिका को आजीवन क्लेश और पाप से बचाने का निर्देश दे तो देश की विधि उसके रास्ते में नहीं आनी चाहिए। यहीं से अन्तःकरण की स्वतंत्रता के अधिकार की मान्यता का प्रारम्भ होता है जो व्यक्ति की स्वतंत्रता की अन्य अभिव्यक्तियों को आधारभूत अनिवार्य शर्त है।

विधायी इतिहास-दूसरी धारा।

मि० ग्रान्ट द्वारा तैयार किया गया और लैजिस्लेटिव काउंसिल में लाया गया मूल विधेयक[1] जिसका प्रथम पठन 17 नवम्बर, 1856 को हुआ, अधिनियम की केवल पहली दो

---

1. राष्ट्रीय अभिलेखागार फाइल, पृष्ठ 55-58 (मि० ग्रान्ट)

धाराओं का था । पहली धारा पुनर्विवाह को मान्यता की अभिवृत्ति करती थी । दूसरी धारा इस प्रकार थी :

"ऐसे सब अधिकार तथा हित जो किसी विधवा को उसके मृत पति की सम्पत्ति में भरणपोषण के तौर पर या विरासत के रूप में है, उसके दूसरे विवाह पर इस प्रकार समाप्त और पर्यवसित हो जायेंगे मानो उसकी उस समय मृत्यु हो गई हो, और सब उसके मृत पति के निकटतम वारिस जो तब जीवित हों ऐसी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होंगे ।

परन्तु इस धारा की कोई बात किसी विधवा के किसी सम्पदा या अन्य सम्पत्ति में, जिसको कि वह अपने मृत पति से अन्यथा रूप में विरासत द्वारा उत्तराधिकारी हुई हो या जिसकी कि वह अपने मृत पति के विल के अधीन हकदार हुई हो अथवा किसी सम्पदा या अन्य सम्पत्ति में, जो उसके पास स्त्रीधन के रूप में हो, या जिसे उसने अपने मृत पति के जीवनकाल के दौरान या उसकी मृत्यु के पश्चात स्वयं अर्जित किया हो, अधिकारों और हितों पर प्रभाव नहीं डालेगी।"

प्रवर समिति

प्रवर समिति

प्रवर समिति ने जिसे विधेयक निर्दिष्ट किया गया था उन मामलों के लिए उपबन्ध करना ठीक समझा जिनमें पति की सम्पत्ति, पहले पुत्रों और पौत्रों को विरासत में मिलकर तत्पश्चात प्रथमत: पाने वाले के वारिस के रूप में विधवा में निहित होती है । समिति ने सोचा कि इन मामलों में विधेयक की दूसरी धारा[1] भी लागू हो-

1. दूसरी धारा के लिए, पीछे देखिए ।

हो सकती है और उन्होंने उसे तदनुसार परिवर्तित कर दिया। समिति ने उस धारा का परन्तुक निकाल दिया और सम्पत्ति में विधवा के अधिकारों को, जिन्हें उसने दूसरे विवाह पर खोना नहीं था, एक पृथक धारा[1] द्वारा सुनिश्चित कर दिया।

विरासत ।

दूसरी आपत्ति यह उठाई गई कि विरासत के हिन्दुओं के अधिकार घनिष्ठ रूप से धार्मिक मान्यताओं से सम्बन्धित थे और यह असम्भव था कि प्रस्तावित विधि के अधीन विरासत पाने वाले व्यक्ति उसके प्रतिकूल सिद्धान्त मानने वाले परिवार द्वारा मान्य किए जाएं, वे धार्मिक मान्यताओं का पालन करने के अयोग्य थे और उन्हें विरासत के अधिकार प्राप्त करने के लिए अनुज्ञात करना अनुचित होगा।

संपरिवर्तन

विधेयक[2] के समर्थकों ने विधान के समर्थन में दो दलीलें दीं। पहली यह थी कि जब कोई हिन्दू विधवा ईसाई या मुसलमान हो जाती है और फिर विवाह करती है तो स्थानीय विधि के अधीन उसके सिविल अधिकार वैसे ही रहते हैं जैसे उसके संपरिवर्तन से पूर्व थे किन्तु यदि हिन्दू रहते हुए वह पुनर्विवाह करती है तो उसके अधिकार कम हो जाते हैं। उन्होंने दलील दी कि यह अपने ही धर्म पर दृढ़ अन्तःकरण से दृढ़ रहने के लिए उस पर गम्भीर कष्ट थोपना है।

असतीत्व

दूसरे, उन्होंने इस विचार के लिए कि यदि

---

1. राष्ट्रीय अभिलेखागार फाइल, पृष्ठ 1119 और आगे
2. तारीख 15 जनवरी, 1856 की अर्जी (राष्ट्रीय अभिलेखागार फाइल, पृष्ठ 187)।

कोई हिन्दू विधवा धार्मिक नियम व्यतीत करती है तो सम्पत्ति पर उसके अधिकार प्रभावित नहीं होते, और डेव गोसौमीन दोनियो बनाम मैकेन- नाम्योकर्न दौस[1] वाला मामला मूल किया (जो जाति निर्योग्यता निवारण अधिनियम, 1850 के अधीन विनिश्चित किया गया था)। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रस्तावित किया कि वैदिक कृत्यों के अनुरूप सामान्य हिन्दू प्रकार के विवाह के बजाय रजिस्ट्रार के समक्ष सादा करार और घोषणा विधिमान्य विवाह के लिए पर्याप्त होनी चाहिए।[2]

प्रवर समिति ने इस आपत्ति पर इस सिद्धान्त से विचार किया कि बड़े विशेषाधिकार में छोटा अन्तर्ग्रस्त नहीं होना चाहिए। यदि कोई हिन्दू विधवा मुसलमान हो जाती है और इस प्रकार सम्पूर्ण हिन्दू संहिता को परित्यक्त कर देती है तो यह स्वीकार किया गया कि देश की विधि के अनुसार वह विधिमान्य विवाह कर सकती है और ऐसे विवाह से उसके बच्चे धर्मज होंगे और उसके हिन्दू पूर्वजों की सम्पत्ति विरासत में पायेंगे। किन्तु यदि वही विधवा हिन्दू बनी रही और उसने हिन्दू विधि का ऐसा निर्वचन अपनाया जो (यद्यपि हिन्दुओं की बहुसंख्या का निर्वचन नहीं था) एक बड़ी सम्मानित अल्पसंख्या का निर्वचन प्रतिबिंबित

---

1. डोव डेव सोमोनीभ दोनियो बनाम नाम्योकर्न दौस, मूर एण्ड टेलर्स रिपोर्ट, ग्रंथ 2, पृष्ठ 300 (पी० सु० न्या०) (राष्ट्रीय अभिलेखागार फाइल पृष्ठ 188)
2. तारीख 15 जनवरी, 1856 को अर्जी (राष्ट्रीय अभिलेखागार फाइल, पृष्ठ 188)।

करता है(जो अल्पसंख्या मात्र सिद्धान्त रूप में अपर्याप्त न हो), यह माना गया कि देश की विधि के अनुसार उसे विधिमान्य विवाह करने के अयोग्य होना चाहिए। समिति ने इसे मान्य सिद्धान्त नहीं समझा।

इस प्रसंग में यह ध्यान में रखने योग्य है कि यद्यपि 1856 में प्रवर समिति के सदस्यों के विचार में यह बात स्पष्ट था कि हिन्दू धर्म से सम्परिवर्तन विरासत के मामले में संपरिवर्तित व्यक्ति के विरुद्ध आकस्मिक अपवर्जन के रूप में प्रवृत्त नहीं होता किन्तु अर्ध शताब्दी के पश्चात् मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने <u>विट्ट तवरम्मा</u> बनाम <u>शिवय्या और अन्य</u>[1] के मामले में बहुमत से (वालिस मु० न्या० और ओल्डफील्ड न्या०) यह अभिधारित किया कि जो हिन्दू विधवा मुसलमान हो जाए और मुसलमान से विवाह करले वह पुनर्विवाह के कारण हिन्दू विधि के सामान्य सिद्धान्तों के अधीन अपने पहले पति की सम्पत्ति में अपना हित खो देती है। वालिस मु०न्या० ने यह भी अभिधारित किया कि वह यह हित हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1856 की धारा 2 के कारण खोती है। शेषगिरि अय्यर न्या० ने विसम्मति प्रकट की और उनकी यह राय थी कि हिन्दू विधि का यह नियम, कि जो विधवा पुनर्विवाह कर लेती है और अपने मृत पति की सहभागिनी के रूप में वफादार नहीं रहती वह उसकी सम्पत्ति को विरासत में नहीं पा सकती, केवल तभी लागू किया जा सकता है जब वह हिन्दू विधि के क्षेत्र के अन्दर होती है। धर्म-त्याग के पश्चात् उसका पुनर्विवाह उसे विरासत के उस अधिकार से वंचित नहीं कर सकता जो दूसरे धर्म में उसके संपरिवर्तन की तारीख को उसके पक्ष में अस्तित्वशील था।

1. <u>विट्ट तवरम्मा</u> बनाम <u>शिवय्या और अन्य</u> ए०आई०आर० 1919

का हिन्दू विधि के अधीन पूर्ण आयु की अविवाहित लड़की अपना विवाह कर सकती थी इसलिए समिति ने सोचा कि पूर्ण आयु की विधवा को भी वैसी ही शक्ति होनी चाहिए।

पुनर्विवाह पर अधिकारों का समपहरण।

गवर्नर जनरल फार सेंट्रल इंडिया के एजेंट सर राबर्ट हेमिल्टन ने सुझाव दिया कि विधवा को अधिनियम के पारित किए जाने के पूर्व बनाए गए विल से अपने मृत पति द्वारा छोड़ी गई सम्पत्ति को, उसके अवशेष के वसीयतकर्ता के बच्चों के साथ आजीवन प्रतिधारित रखने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए। प्रवर समिति ने समझा कि विधेयक की दूसरी धारा का सिद्धान्त यह है कि विधवा के पुनर्विवाह पर वह सब समपहृत हो जाना चाहिए जो विधि उसे उसके मृत पति की सम्पत्ति में अधिकारेन प्रदान करती है किन्तु उसे वह सब प्रतिधारित रखना चाहिए जो उसने दानस्वरूप अर्जित किया हो, चाहे वह दान वसीयता हो या जीवनाभ्यन्तर कार्य से हुआ हो। इस विभेद का कारण यह था कि विरासत सम्बन्धी हिन्दू विधि विधवा को अपने मृत पति की सम्पत्ति में जो बहुत ही विलक्षण हित प्रदान करती थी उसका आशय, यदि कुछ पाठों की जांच की जाए, वास्तव में प्रसावपर्यन्त हित से अधिक नहीं था, कि जिन शर्तों पर वह उसे दिया जाता है दूसरे विवाह से असंगत थीं और यद्यपि वह सम्पत्ति के निर्बाधक कब्जे की हकदार थी किन्तु वह, कुछ आपवादिक दशाओं को छोड़कर, उसके किसी भाग का अन्य संक्रामण नहीं कर सकती थी। कोई आत्यंतिक हित, जो वह दान से प्राप्त करती थी, भिन्न आधार पर होता था।

यदि दाता ने दान पर कोई शर्त न लगाई हो तो समिति का ख्याल था कि उन्हें उसके हेतु के बारे में अनुमान नहीं करना चाहिए और न यह ही पूछना चाहिए कि यदि उसने विधि के परिवर्तन की पूर्व कल्पना कर ली होती तो वह दान को सशर्त बनाता या नहीं ।

किसी भी दशा में समपहरण का आशय शास्ति अथवा दूसरे विवाह पर प्रतिबन्ध के रूप में प्रवृत्त होना नहीं था । एक दशा में वह इसलिए किया जाता था कि वह एक ऐसी शर्त का परिणाम था जिसे ~~जो कि~~ विधि सम्पत्ति से संलग्न करती है । दूसरी दशा में वह इसलिए किया जाता था कि विधान मण्डल किसी दान पर शर्तें लगाने के लिए बाध्य नहीं था जो कि दाता ने अशर्त किया हो किन्तु अक्सर यह होता था कि वसीयतकर्ता अपनी पत्नी को अधिकतर उसी प्रकार का हित प्रदान करता था जैसा कि वह विधि के अनुसार उसकी वारिस होने पर निर्वसीयतता की दशा में प्राप्त करती । वह कभी कभी उसकी सम्पत्ति के आयतन में परिवर्तन कर सकता था फिर भी उसको इस प्रकार कि उसकी अस्तित्वावधि और उपयोग सीमित हो और उसे अन्य संक्रामण की शक्ति न दे । समिति को यह प्रतीत हुआ कि ये सब दान, जो न्यूनाधिक रूप में हिन्दू विधवा की विरासत की सम्पत्ति के प्रकार के थे, उसी के समान आधार पर होने चाहिएं ।

दत्तक-ग्रहण । एक आपत्ति यह उठाई गई थी कि पुनर्विवाह के बाद विधवाएं पुत्रों को दत्तक-ग्रहण करने के लिए असमर्थ होंगी हालांकि उनके मृत पतियों ने उनको वैसा करने का आदेश दिया हो । समिति ने कहा कि यदि कोई विधवा दत्तक-ग्रहण करने के लिए सम्यक रूप से प्राधिकृत हो तो वह

अपने दूसरे विवाह के पूर्व वैसा कर सकती है और पुनर्विवाह की शक्ति उसके मृत पति के लिए वारिस दत्तक-ग्रहण न करने की उत्प्रेरणा के रूप में प्रयुक्त नहीं हो सकती क्योंकि पुनर्विवाह से वह ऐसी सब विरासत से अपने आप को वंचित कर लेती है ।

निःसंतान ~~संतानहीन~~ विधवा ।

प्रस्तावित विधेयक के विरुद्ध एक और आपत्ति इस प्रकार थी :

> "यदि कोई हिन्दू दो पुत्रियां छोड़ कर मर जाता है जो दोनों विधवा हैं, किन्तु उनमें से एक के एक पुत्र है और दूसरी के कोई संतान नहीं है तो विरासत की विधि से वह पुत्र अपने मातामह का एकमात्र वारिस होगा, किन्तु यदि निःसंतान ~~सन्तानहीन~~ विधवा दूसरा विवाह कर लेती है और यदि दूसरे विवाह से उसके सन्तान हो जाती है तो प्रस्तावित विधि द्वारा वे अपनी माता के पिता की सम्पत्ति में उस विधवा के पुत्र के साथ समान हिस्सों के हकदार होंगे जिसने पुनर्विवाह नहीं किया है ।"

प्रवर समिति ने इस आपत्ति को निराधार कहा है क्योंकि यदि कोई हिन्दू न तो पुत्र और न विधवा छोड़ कर किन्तु पुत्रियां छोड़कर मर जाता है तो अविवाहित पुत्री हकदार होगी और अन्य पुत्रियां जिनका विवाह हो चुका है अपवर्जित होंगी चाहे वे निःसंतान ~~सन्तानहीन~~ विधवाएं हों या उनके सन्तान हो अथवा हो सकती हों । अविवाहित पुत्री के न होने पर वे पुत्रियां जिनके सन्तान हो या हो सकती हों हकदार होंगी । कोई पुत्री जो बांझ या निःसंतान ~~सन्तानहीन~~ विधवा हो बिल्कुल ही अपवर्जित है ।

अवयस्क विधवा का पुनर्विवाह कराना।

प्रवर समिति का बातों पर पुन: विचार करने पर हम देखते हैं कि समिति ने अवयस्क विधवा का विवाह कराने के सम्बन्ध में विशेष रूप से उपबन्धित करना आवश्यक समझा। ऐसी वधू के मामले में जो अवयस्क हो पुरुष नातेदार द्वारा या उसी जाति के पुरुष द्वारा विवाह कराना विवाह संस्कार का एक आवश्यक अंग समझा गया, किन्तु चूंकि विधवा द्वारा अपने पिता का परिवार छोड़ दिया गया और मृत पति के परिवार की सदस्या बना गया समझा जाता है अत: उसके नातेदार द्वारा उसका विवाह कराने के अधिकार के बारे में शंका हो सकती है जब तक कि उस विषय की बाबत विशेष उपबन्ध न कर दिया जाए; और इसी प्रकार की शंका उसके मृत पति के परिवार द्वारा उसका विवाह कराने के अधिकार के बारे में हो सकती है। उसके अपने अधिकार भी, उसके अवयस्क होने या वयस्क हो जाने दोनों दशाओं में, शंका स्पद हो सकते हैं। एक खण्ड में इन बातों के लिए विशेष रूप से उपबन्ध किया गया। समिति ने प्रस्तावित किया कि जहां विधवा अवयस्क हो वहां उसका विवाह कराने वाले व्यक्ति उसके अपने पुरुष नातेदार होंगे, ठीक उसी प्रकार मानो वह अविवाहित हो तथा उसके विवाह की विधिमान्यता के लिए उनकी सम्मति आवश्यक होगी। और यदि वह वयस्क हो गई हो तो विवाह होने के लिए उसकी अपनी सम्मति पर्याप्त होगी चाहे उसका विवाह किसी पुरुष नातेदार द्वारा कराया जाए या नहीं। चूंकि उसके पति का परिवार विधवा को पुनर्विवाह के लिए उत्प्रेरित करने में हितबद्ध हो सकता है अत: समिति ने यह उचित समझा कि अवयस्क विधवा की दशा में उपर्युक्त रीति में, उसके अपने परिवार की सम्मति आवश्यक बना दी जाए। उस समय

यद्यपि अर्जीदारों की आपत्ति इस प्रकार नहीं मानी गई तो भी प्रवर समिति ने अनुभव किया कि अर्जीदारों की दलील से एक कठिनाई प्रेरित होती है, अर्थात् यह कि ऐसे संतान होने के अयोग्य होते हुए ~~सन्तानहीन~~ निःसंतान विधवा पुत्री अपने पिता की परम्परा को जारी नहीं रख सकती थी और विरासत से अपवर्जित थी । यदि अधिनियम इस विषय पर चुप रहा तो तब यह कहा जा सकता है कि विधि का कारण समाप्त होने पर स्वयमु विधि समाप्त हो जाती है ।

यद्यपि ~~अर्जीदारों को~~ प्रवर समिति को ऐसे निष्कर्ष में कोई निश्चयात्मक अन्याय नजर नहीं आया फिर भी किसी प्रकार का भ्रम दूर करने के लिए उसने यह उपबन्ध करना वांछनीय समझा कि कोई व्यक्ति जो किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु पर ~~सन्तानहीन~~ निःसंतान विधवा पुत्री होने के कारण, ऐसे अन्य व्यक्ति की मृत्यु पर विरासत में मिलने वाली सम्पत्ति में, वर्तमान विधि के अनुसार अंश प्राप्त करने से अपवर्जित होती, उस सम्पत्ति में कोई अंश प्राप्त करेगी क्योंकि वह बाद में इस विधि के उपबन्धों का लाभ उठा सकती है और सन्तान पैदा करने में समर्थ हो सकेगी ।

विधवा पुत्री जो पुनर्विवाह कर लेती है ।

समिति ऐसी विधवा पुत्री के मामले का अपवर्जन करना चाहती थी जिसने अपने पिता के जीवनकाल में पुनर्विवाह कर लिया हो और उसका यह ख्याल था कि उसकी वही स्थिति होना चाहिए जो किसी अन्य विवाहित पुत्री की ।

वसीयत करने का अधिकार।

मद्रास न्यायालय सदर अदालत (के न्यायाधीशों) ने कहा कि हिन्दू विधि हिन्दुओं में विल द्वारा वसीयत करने के अधिकार को मान्य नहीं करता और हिन्दुओं में वसीयत का विधि विलों के अधीन हकों को मान्यता पर अड़चनें लगाता है। इस कारण से न्यायाधीशों ने सोचा कि (हिन्दुओं द्वारा विलों के सम्बन्ध में न्यायालयों में जो भी पद्धति हो) यह उचित होगा कि जो विधवा पुनर्विवाह कर लेता है उसके लिए किसी ऐसी सम्पदा या सम्पत्ति में जिसके लिए वह अपने मृत पति के विल के अधीन हकदार हो सकती हो अधिकार और हित परिरक्षित रखने वाला उपबन्ध लुप्त कर दिया जाना चाहिए। प्रवर समिति का यह विचार था कि इस उपबन्ध को बनाए रखना बिल्कुल आवश्यक है क्योंकि यद्यपि हिन्दू विल भारत के अन्य भागों में विधिमान्य नहीं है किन्तु बंगाल में वे निःसन्देह विधि मान्य और रोजमर्रा के काम के हैं। इसलिए यह उपबन्ध बंगाल के लिए अपरिहार्य है और अन्यत्र वह कार्यान्वित नहीं होगा क्योंकि कोई विधवा विल के अधीन किसी सम्पत्ति की हकदार नहीं हो सकती जब तक कि उस विल को विधि द्वारा मान्य स्वीकार न किया गया हो।

VI. सामान्य विवाह अधिनियम

सामान्य विवाह अधिनियम के लिए प्रस्ताव।

यह ध्यान में रखने लायक ~~विलक्षण~~ बात है कि कुछ और प्रगतिशील समाज सुधारकों ने (9) फरवरी 9, 1856 की तारीख को एक अर्जी द्वारा एक सामान्य विवाह अधिनियम का प्रारूप पेश किया जिससे किसी धर्म के अनुयायी पुरुष

और स्त्रियां जो वयस्क न हों किसी प्रकार के धार्मिक कर्म के बिना, साक्षियों की उपस्थिति में एक घोषणा हस्ताक्षरित करके अपना विवाह अनुष्ठापित कर सकते थे ।

मान्य विवाह अधिनियम र प्रवर समिति की राय।

किन्तु प्रवर समिति ने यह अनुमान किया कि प्रस्तावित प्रकार का सामान्य विवाह अधिनियम विधेयक से बिल्कुल भिन्न और उसके प्रतिपाद्य से साधारण तौर पर बहुत अधिक बड़ा होगा ।

इसके अतिरिक्त यह बात भी है कि जिन लोगों के फायदे के लिए उपबन्ध करना विधेयक का उद्देश्य है वे निश्छल और अपने मत से कट्टर हिन्दू हैं । वे किसी भी ऐसे विवाह को जो उनके अपने धार्मिक कृत्यों के अनुसार न किया जाए, उनका अपनी विधि के अनुसार किया गया और इसलिए नैतिक नहीं समझेंगे । वे इन धार्मिक कृत्यों को उस मामले के लिए पूर्णत: लागू और पूर्णत: पर्याप्त समझते हैं । इसके विपरीत मानने के लिए कोई आधार नहीं है । उस दशा में जब राष्ट्रीय विधि घोषित करता है कि ये धार्मिक कृत्य उस मामले के लिए पर्याप्त नहीं है, यह उन लोगों पर लांछन लगाना होगा - और वस्तुत: कुछ हद तक प्रतिपक्षियों का पक्ष लेना होगा - जिन लोगों के फायदे के लिए कि विधेयक आशयित है । यह बात उस विधेयक के प्रति कोई आपत्ति नहीं है कि इस विधेयक से उन लोगों को फायदा नहीं मिला जिनको सामान्य विवाह अधिनियम से फायदा मिल सकता था । समिति ने आशा प्रकट की कि जो लोग स्वयम् अपने लिए वास्तव में ऐसा अधिनियम(अर्थात् सामान्य विवाह विधि) पारित किया जाना चाहते हैं वे उस विषय को वर्तमान विधेयक के विषय को अनावश्यक रूप से एक

साथ इस के दोनों को जटिल बनाए बिना, उस ~~के लिए~~ निमित्त जो कुछ वे चाहते हैं, उसके लिए अर्जी पेश करेंगे ।

5 जुलाई, 1856 को
धेयक के लिए अनुमति ।

11. <u>विधेयक के लिए अनुमति</u>

विधेयक 19 जुलाई, 1856[1] को लेजिस्लेटिव काउंसिल में पारित हुआ । 24 जुलाई, 1856 को ढाका जिला के निवासियों ने विधेयक के प्रति अपने समर्थन पर जोर दिया क्योंकि "पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने हिन्दू विधवाओं के पुनर्विवाह पर अपने दो प्रवचनों में जो दर्शित किया है किसी भी प्रकार उनके हिन्दू शास्त्रों के विरुद्ध नहीं है ।"

अगले दिन, 25 जुलाई, 1856 को विधेयक पर गवर्नर जनरल ने अनुमति दे दी ।[2]

------

1. राष्ट्रीय अभिलेखागार फाइल, पृष्ठ 1233
2. राष्ट्रीय अभिलेखागार फाइल, पृष्ठ 1242